

कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष
९३

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
३

श्रीकृष्णसे राधाजीका प्राकट्य



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



भगवान् नृसिंह

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता ।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम् ॥

वर्ष
१३

गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, मार्च २०१९ ई०

संख्या
३

पूर्ण संख्या ११०८

भगवान् नरसिंहको नमस्कार है!

कृत्वा नृसिंहं वपुरात्मनः परं हिताय लोकस्य सनातनो हरिः ।

जघान यस्तीक्ष्णनखैर्दितेः सुतं तं नारसिंहं पुरुषं नमामि ॥

x x x x

तप्तहाटककेशान्तज्वलत् पावकलोचन । वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥

पान्तु वो नरसिंहस्य नखलाङ्गलकोटयः । हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रासृक्कर्दमारुणाः ॥

जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनेके लिये स्वयं ही श्रेष्ठ नृसिंहरूप धारण करके अपने तीखे नखोंद्वारा दितिनन्दन हिरण्यकशिपुका वध किया था, उन परमपुरुष भगवान् नरसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ ।
xxx हे दिव्य सिंह ! तपाये हुए स्वर्णके समान पीले केशोंके भीतर प्रज्वलित अग्निकी भाँति आपके नेत्र देदीप्यमान हो रहे हैं तथा आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक कठोर है, इस प्रकार अमित प्रभावशाली आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है । भगवान् नृसिंहके नखरूपी हलके अग्रभाग, जो हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके वक्षःस्थलरूपी खेतकी रक्तमयी कीचड़के लगनेसे लाल हो गये हैं, आपलोगोंकी रक्षा करें । [श्रीनरसिंहपुराण]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, मार्च २०१९ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान् नरसिंहको नमस्कार है!.....	३	गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार).....	२५
२- कल्याण.....	५	१५- दृढ़ संकल्प [प्रेरक-कथा] (श्रीराजेशजी माहेश्वरी).....	२६
३- श्रीकृष्णके वामांशसे मूल प्रकृति श्रीराधाका प्राकट्य [आवरणचित्र-परिचय].....	६	१६- श्रीवृन्दावन-महिमा.....	२७
४- मनको संयत और एकाग्र करनेके उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका).....	७	१७- 'जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे' (डॉ० श्रीमृत्युंजयजी उपाध्याय) ..	२८
५- 'पिबत भागवतं रसमालयम्' (गोलोकवासी श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र).....	१०	१८- श्रीजानकीजीवनाष्टकम्.....	३०
६- कामधेनुका सुपात्र (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय).....	११	१९- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे).....	३१
७- भोगवाद और आत्मवाद (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ..	१३	२०- शरीरको कैसे निरोग रखा जाय? (श्रीरामचन्द्रजी वैरागी)....	३२
८- पुरुषार्थ (श्रीत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज).....	१८	२१- अधिदेवता [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र').....	३३
९- कामनाका त्याग (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज).....	१९	२२- हम क्या करें? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज).....	३५
१०- जगत मुसाफिरखाना [कविता] (श्रीगेंदनलालजी कन्नौजिया).....	२०	२३- भगवान् शिवके मांगलिक वरवेशकी एक झाँकी [कविता] (श्रीशिवकुमारसिंहजी 'शिवम्').....	३६
११- श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें युगलतत्त्व (गोस्वामी श्रीविष्णुकान्तजी महाराज, निम्बार्कपीठ, प्रयाग).....	२१	२४- एक विलक्षण विभूति—ब्रह्मर्षि श्रीश्री सत्यदेव [संत-चरित] (श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव).....	३७
१२- ब्रजमें होली खेलत राधा-कृष्ण (श्रीउमेशप्रसादसिंहजी).....	२३	२५- नामधारी सिक्खोंकी गोभक्ति (संत श्रीनिधानसिंहजी आलिम).....	४१
१३- 'शारे! चरणकमल रज दे!' [कविता] (श्रीओझेलालजी शिववेदी, एम०ए०, साहित्यरत्न).....	२४	२६- साधनोपयोगी पत्र.....	४३
१४- संत-स्मरण (परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके		२७- ब्रतोत्सव-पर्व [वैशाखमासके व्रत-पर्व].....	४५
		२८- कृपानुभूति.....	४६
		२९- पढ़ो, समझो और करो.....	४७
		३०- मनन करने योग्य.....	५०

चित्र-सूची

१- श्रीकृष्णसे राधाजीका प्राकट्य.....	(रंगीन).....	आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् नृसिंह.....	(").....	मुख-पृष्ठ
३- श्रीकृष्णसे राधाजीका प्राकट्य.....	(इकरंगा).....	६
४- राजा सहस्रार्जुन.....	(").....	११
५- परशुरामद्वारा क्षत्रियविनाशकी प्रतिज्ञा.....	(").....	१२
६- श्रीरामका लक्ष्मणको उपदेश.....	(").....	१४
७- ब्रह्मर्षि श्रीश्री सत्यदेव.....	(").....	३७
८- नामधारी सिक्खोंकी सत्यनिष्ठा.....	(").....	४२

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क

₹२५०

विदेशमें Air Mail
शुल्क

वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15,000)

{ Us Cheque Collection
Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹१२५०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

☎ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

याद रखो—आत्मा तो तुम्हारा स्वरूप ही है और भगवान् उस आत्माके भी आत्मा हैं। आत्माके साथ उनकी सजातीयता तो है ही, एकात्मता भी है। अनुभूति होनेभरकी देर है, फिर तो इन विकारोंकी सत्ता वैसी ही रह जायगी, जैसी जागनेके बाद स्वप्नके पदार्थोंकी रह जाती है। **‘शिव’**

श्रीकृष्णके वामांशसे मूल प्रकृति
श्रीराधाका प्राकट्य



कल्पके आदिमें विश्वके आदिकारण भगवान् श्रीकृष्णके मानसमें सृष्टिविषयक संकल्प उदय हुआ। [उन्होंने अपने अव्यय स्वरूपको स्वेच्छासे दो रूपोंमें विभक्त कर लिया। उनका वामांश नारीरूप तथा दक्षिणांश पुरुषरूप हुआ।] उनका वह आह्लादक नारीरूप ही श्रीराधाके नामसे अभिहित होता है। जैसा कि ब्रह्मवैवर्त-पराणमें प्रतिपादित है—

श्रीकृष्णतेजसोऽर्धेन सा च मूर्तिमती सती ।

एका मर्तिर्द्विधाभता भेदो वेदे निरूपितः ॥

इयं स्त्री सा पमान किं वा सा वा कान्ता पमानयम् ।

द्वे रूपे तेजसा तुल्ये रूपेण च गुणेन च।

पराक्रमेण बद्ध्या वा ज्ञानेन सम्पदापि च ॥

(ब्रह्मवैवर्तप० श्रीकृष्णजन्म० १३।९७-९८)

भगवती श्रीराधा तेजस्विता आदि गुणोंमें परमपुरुष श्रीकृष्णसे अल्पमात्र भी न्यून नहीं हैं।

उन आह्लादिनी महाशक्तिके साथ परमपुरुष श्रीकृष्णका सुदीर्घकालपर्यन्त लीलाविहार होता रहा, तदनन्तर सृष्टिके संकल्पको पूर्ण करनेकी अपेक्षासे श्रीकृष्णने अपने ही स्वरूपभूत तेजका उन पराप्रकृतिमें आधान किया।

मूलप्रकृति श्रीराधामें सौ मन्वन्तरतक अवस्थित रहनेके उपरान्त वह तेज एक अप्राकृत शिशुरूपमें परिणत हो गया। देवी श्रीराधाने उसे ब्रह्माण्डको आवृत करनेवाली अगाध जलराशिमें छोड़ दिया। यह शिशु ही जलशायी विराट् पुरुषके नामसे प्रसिद्ध हुआ। तदुपरान्त श्रीराधासे लक्ष्मी, सरस्वती तथा स्वयं उन्हींकी कार्यरूपा मूर्ति श्रीराधिकाका प्राकट्य हुआ। इसके अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने स्वयंको पुनः दो रूपोंमें विभक्त किया, उनका दक्षिणार्धांग द्विभुज श्रीकृष्णके रूपमें और वामार्धांग चतुर्भुज विष्णुके रूपमें परिणत हुआ। विष्णुको लक्ष्मी एवं सरस्वतीके साथ श्रीकृष्णने वैकुण्ठमें अधिष्ठित किया तथा स्वयं वे अपनी कार्यरूपा शक्ति राधिकाके साथ स्थित रहे। वैकुण्ठाधिपति श्रीविष्णुके नाभिकमलसे आविर्भूत ब्रह्माजीके द्वारा सृष्टिका विस्तार हुआ। भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे उनके प्रेमभाजन गोप एवं श्रीराधाके रोमकूपोंसे असंख्यासंख्य गोपांगनाएँ प्रकट हुईं। कारणप्रकृतिरूपा श्रीराधासे भगवती दुर्गाका आविर्भाव हुआ। ये श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री कही जाती हैं। इन्हींसे विश्वकी सभी शक्तियोंका समुद्भव होता है। तदुपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण पुनः दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनका वामांग भगवान् रुद्रके रूपमें परिणत हुआ तथा दक्षिणांगसे वे अपने मूल स्वरूपमें ही बने रहे। पराप्रकृति श्रीराधासे आविर्भूत श्रीदुर्गा ही भगवान् रुद्रकी परमशक्ति हुई। इस प्रकार विश्वके आदिकारण श्रीकृष्णने कारणरूपा श्रीराधाके संयोगसे ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रको एवं उनकी शक्तियोंको प्रकटकर उन्हें सृष्टिके सृजन, पालन तथा संहारके कार्यमें नियोजित किया। वस्तुतः श्रीराधा-माधव ही सृष्टिके उद्भावन, पालक एवं संहर्ता हैं, यह समग्र प्रपंच उन्हींसे उद्भूत तथा उनसे ही पुष्ट होकर अन्तमें उन्हींमें विलयको भी प्राप्त होता है।

मनको संयत और एकाग्र करनेके उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यके कल्याणमें सबसे प्रधान बाधा बुद्धि, मन और इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें आसक्त होकर उन सबके अधीन हो जाना ही है; क्योंकि विषयोंमें आसक्तिवाले यत्नशील विवेकी मनुष्यकी भी इन्द्रियाँ बलपूर्वक उसके मनको विषयोंकी ओर आकर्षित कर लेती हैं (गीता २।६०)। इसलिये साधकको मनके द्वारा सभी इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माके शरण हो जाना चाहिये (गीता २।६१)। जबतक मन वशमें नहीं होता तबतक परमात्माकी प्राप्ति होना बहुत ही कठिन है। भगवान् कहते हैं—

‘जिसका मन वशमें नहीं हुआ है, ऐसे पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य है और वशमें किये हुए मनवाले प्रयत्नशील पुरुषद्वारा साधनसे उसका प्राप्त होना सहज है—यह मेरा मत है (गीता ६।३६)।’

अतः मनको अपने वशमें और स्थिर करनेके लिये शास्त्रोंमें जो बहुत-से उपाय बताये हुए हैं, उनमेंसे किसी भी उपायके द्वारा मनको निगृहीत और स्थिर करना परम आवश्यक है। मनकी चंचलता तो प्रत्यक्ष है। अर्जुनने भी चंचल होनेके कारण मनको वशमें करना कठिन बताया है (गीता ६।३३-३४)। किंतु भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके कथनका समर्थन करते हुए मनको रोकना कठिन मानकर भी इसको वशमें करनेका उपाय बतलाते हैं—

‘हे महाबाहो! निःसन्देह मन चंचल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है, परंतु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता है (गीता ६।३५)।

महर्षि पतंजलिजीने भी कहा कहा है—

‘अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।’

(योगदर्शन १।१२)

‘अभ्यास और वैराग्यसे चित्तवृत्तियोंका निरोध होता है।’

वे अभ्यासका रूप इस प्रकार बतलाते हैं—

‘तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।’

(योगदर्शन १।१३)

‘उन दोनोंमेंसे स्थितिके लिये जो प्रयत्न करना है, वह ‘अभ्यास’ है।

‘स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।’

(योगदर्शन १।१४)

‘परंतु यह अभ्यास लम्बे समयतक, निरन्तर (लगातार) और आदरपूर्वक सांगोपांग सेवन किया जानेपर दृढ़ अवस्थावाला होता है।’

इस अभ्यासके अनेक प्रकार हैं। जैसे—

(१) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँ ही परमात्माके स्वरूपका अनुभव करना और वहीं मनको परमात्मामें लगा देना; क्योंकि परमात्मा सब जगह सदा ही व्यापक हैं, कोई भी ऐसा स्थान या काल नहीं, जहाँ परमात्मा न हों।

(२) मन जहाँ-जहाँ संसारके पदार्थोंमें जाय, वहाँ-वहाँसे उसको विवेकपूर्वक हटाकर परमात्माके स्वरूपमें लगाते रहना। (गीता ६।२६)

(३) विधिपूर्वक एकान्तमें बैठकर सगुण भगवान्का ध्यान करना। भगवान्ने गीतामें कहा है—‘शुद्ध भूमिमें, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला* और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसनको स्थिर-स्थापन करके उस आसनपर बैठकर चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए मनको एकाग्र करके अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे। काया, सिर और गलेको समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर अन्य दिशाओंको न देखता हुआ, ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला सावधान योगी मनको रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे (गीता ६।११—१४)।’

* मृगचर्म अपनी स्वाभाविक मृत्युसे मरे हुए मृगका होना चाहिये, जान-बूझकर मारे हुए मृगका नहीं। हिंसासे प्राप्त मृगचर्म साधनमें सहायक नहीं हो सकता। पवित्र मृगचर्मके अभावमें ऊन और कुशाका आसन ही पर्याप्त है।

ही है, एकान्तमें आत्मकल्याणके साधनके लिये बैठनेपर भी मन इधर-उधर भटकता रहता है। अतः यदि इसके निग्रहका उपाय नहीं किया जायगा तो साधकका जबतक जिस तरह समय बीतता आया है, वैसे ही भविष्यमें बीतता रहेगा। इससे यह मनुष्य-जन्मका अमूल्य समय व्यर्थ चला जायगा। अतः मनुष्य-जन्मके समयको सार्थक बनानेके लिये शीघ्र-से-शीघ्र इस मनके निग्रहका साधन करना आवश्यक है; क्योंकि अनादिकालसे जो अनन्त दुःखोंकी प्राप्ति होती आ रही है, यह साधन करनेसे ही दूर हो सकती है।

यह मन ही मनुष्यका मित्र है और मन ही शत्रु है। जीता हुआ मन तो मित्र है और जो मन जीता हुआ नहीं है, वह शत्रु है। भगवान् भी गीतामें कहते हैं—

‘जिस मनुष्यद्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उस मनुष्यका तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं

जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रुके सदृश शत्रुतामें बर्तता है (६।६)।'

भगवान्‌के इस कथनपर भलीभाँति ध्यान देना चाहिये और अपने सुधारके लिये तत्पर हो जाना चाहिये। मनुष्यका अभ्यास बड़ा प्रबल होता है। वह दिनमें जैसा मनन करता है, उसके अनुसार रात्रिमें स्वप्नमें भी प्रायः वैसा ही मनन स्वाभाविक होता रहता है। इसलिये हर समय ही भगवान्‌के स्वरूपका मनन करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। नहीं तो, मनुष्यके अधिकारमें जो भी कुछ सम्पत्ति, बल, बुद्धि आदि पदार्थ हैं, वे फिर क्या काम आयेंगे! मृत्यु होनेके पश्चात्‌ ये सब यहीं रह जायँगे। अतः उनको और अपने सर्वस्वको लगाकर भी जिस किसी प्रकारसे भी हो, मनको वशमें करनेके लिये वैराग्ययुक्त चित्तसे कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त तत्परतापूर्वक प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि—

‘मनके हारे हार है, मनके जीते जीत।’

‘पिबत भागवतं रसमालयम्’

एक दिन भगवान् व्यासदेव प्रातःकृत्य सम्पन्नकर सरस्वतीके तटपर बैठे हुए थे। आज उनके हृदयमें और दिनोंकी तरह प्रफुल्लता न थी। कोई कमी हृदयको कुरेद रही थी। वे सोचने लगे कि जनहितके लिये मैंने वेदोंको शाखाओंमें बाँट दिया है और अबतक सत्रह पुराणों और महाभारतकी रचना कर दी है। फिर भी मेरा मन असन्तुष्ट क्यों है ? वह कौन-सी कमी रह गयी है, जिसकी पूर्तिके लिये अन्तःकरण अकला रहा है ?

उन्हें भान हुआ कि मैंने परमहंसोंके प्रिय धर्मोंका प्रायः निरूपण नहीं किया, इसीसे यह बेचैनी है। ब्रह्म रसरूप है, अतः रसरूपमें उसका वर्णन भी अपेक्षित है। ठीक इसी अवसरपर महाभागवत श्रीनारदजी वहाँ आ पधारे। व्यासजी तुरंत उठ खड़े हुए। उन्होंने देवर्षिकी विधिवत् पूजा की। देवर्षिने पूछा—‘आप अकृतार्थ पुरुषकी भाँति खिन्न क्यों हैं?’ व्यासजीने कहा—‘देवर्षे! सचमुच मेरा मन सन्तुष्ट नहीं है। मुझमें जो कमी रह गयी है, कृपया उसे आप बतायें।’

नारदजीने कहा—‘आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है, वैसा निरूपण रसरूप ब्रह्मका नहीं किया है। रसके उल्लासके लिये ब्रह्म रसमय लीला करता है। आप उसका रसमय ही निरूपण करें। इससे आपके हृदयको सन्तोष हो जायगा।’

इसके बाद भगवान् व्यासदेवने जिस ग्रन्थकी रचना की, उसीका नाम है—श्रीमद्भागवत। पुष्पिकामें भगवान् व्यासदेवने इसे 'पारमहंसी संहिता' कहा है। श्रीमद्भागवत भगवान्का स्वरूप ही है। भगवान् रस हैं। भगवान् ही रस हैं।

Server: <https://discogs.club/m/1> MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

कामधेनुका सुपात्र

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

पुराणोंमें वर्णन आता है कि सहस्रार्जुन धर्मपूर्वक



पृथ्वीपर शासन करता था। वह बड़ा पराक्रमी राजा था। एक बार वह वनमें मृगया खेलने गया। वहाँपर उसके मनमें आया कि जब यहाँतक आ ही गये हैं तो थोड़ी दूर और चलकर महात्मा जमदग्नि को प्रणाम भी कर लें। उसके जीवनमें सात्त्विक वृत्ति भी थी, रावणकी तरह वह सद्वृत्तिसे शून्य नहीं था। पर उसमें एक दोष प्रबल हो गया था। रावण और सहस्रार्जुनके जीवनकी अगर तुलना करें तो दीख पड़ेगा कि जहाँ मुनियोंके आश्रमोंको विनष्ट करनेमें रावणको आनन्दका अनुभव होता था, वहाँ सहस्रार्जुनके जीवनमें मुनियोंके प्रति आदरकी वृत्ति थी, जिससे प्रेरित होकर वह जमदग्नि के आश्रममें जाता है। यहाँपर उसकी बुद्धि स्वस्थ और अनुकूल दिखायी देती है। जब वह जमदग्नि के आश्रममें पहुँचा तो जमदग्नि ने उसका स्वागत और सम्मान किया; क्योंकि ये दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। मननशील त्यागी महात्मा और सत्ताधीश एक-दूसरेके सहायक हो सकते हैं। शासक मुनियोंके समक्ष विनत होकर उनसे प्रेरणा ले सकते हैं और सत्ताधीश होनेके कारण मुनियोंको सुरक्षा

प्रदान कर सकते हैं। दैत्यों और राक्षसोंसे मुनियोंकी रक्षा करना राजाका कर्तव्य है। यह एक स्वाभाविक क्रम है कि दोनों एक-दूसरेको महत्त्व दें। और वही यहाँपर हुआ। पर आगे चलकर सहस्रार्जुनके जीवनमें इसकी प्रतिक्रिया बड़ी प्रतिकूल हुई। राजाका स्वागत करने जब जमदग्नि बढ़े तो यह सोचते हुए कि स्वागत आश्रमकी परम्पराके अनुसार किया जाय अथवा राजसिक परम्पराके अनुकूल? उन्हें यही लगा कि ये तो राजसी व्यक्ति हैं, इनको आश्रमके कन्द-मूल-फल सम्भवतः सुस्वादु और प्रिय नहीं लगेंगे, इसलिये इनका सत्कार तो राजसिक वैभवसे किया जाना चाहिये और उन्होंने उनका सेनासहित राजकीय सत्कार किया भी, जो उस वनमें किसी अन्यद्वारा सम्भव भी नहीं था। यहींसे सहस्रार्जुनके मनमें ईर्ष्या जाग उठी। वैभवशाली व्यक्तिको किसी दूसरेका वैभव देखकर प्रसन्नता नहीं होती। जब वह देखता है कि दूसरेके पास इतना वैभव है, तो उसे यह जाननेकी इच्छा होती है कि इतना वैभव उसके पास आया कहाँसे? सहस्रार्जुनने जमदग्निसे पूछ भी लिया—‘महाराज! आप तो वनमें स्थित एक कुटियामें निवास करते हैं, आपके पास इतना वैभव कहाँसे आया?’ जमदग्नि ने भोलेपनसे कह दिया—‘मेरे पास कामधेनु है। उस कामधेनुसे जो माँगता हूँ, वह मुझे देती है। यह सारा वैभव उसीका दिया हुआ है।’

बस, इतना सुनते ही पुरुषार्थी सहस्रार्जुनकी वृत्ति बदल गयी। अबतक उसमें किसी वस्तुको पानेके लिये पुरुषार्थकी वृत्ति थी, पर अब कौन-सी वृत्ति आ गयी? कामधेनुके प्रति लोभकी। कामधेनु अर्थात् बिना कुछ किये जो चाहे वह मिल जाय। पहले तो व्यक्ति यह सोचता है कि यह करेंगे तब यह मिलेगा। और कामधेनु हो तो करें कुछ नहीं, बैठे-बैठे जो चाहें वह मिल जाय। यह लोभकी पराकाष्ठा है। कुछ न करें और इच्छित वस्तु मिल जाय।

जाय, तब तो वह नियन्त्रित लोभ है। लेकिन अगर उस इनकारसे क्रोध आ जाय और बलपूर्वक छीननेका प्रयास आरम्भ हो जाय, तो समझ लेना होगा कि व्यक्तिके मन, बुद्धि एवं अहंकार तीनों ही लोभसे आक्रान्त हो गये हैं और जैसे त्रिधातु ही कुपित हो गये हैं। पहले तो कामधेनुको पानेकी कामना उत्पन्न हुई, फिर उसपर आधिपत्यकी चेष्टा—यह लोभ है। फिर काम तथा लोभकी पूर्तिमें बाधा आनेपर क्रोध भी आ गया। वह क्रोध सात्त्विक नहीं बल्कि राजसी था, जिसने बढ़कर तामसी रूप ले लिया और जिसका दुष्परिणाम मुनिकी हत्या और परशुरामद्वारा



क्षत्रियोंके विनाशकी प्रतिज्ञाके रूपमें सामने आया। अतः लोभ ही समस्त प्रकारके अनर्थों और विनाशका मूल है, क्रोध आदि अन्य दुर्गुण तो उसके लक्षण हैं।

इस कथासे एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि कामधेनुसदृश कोई भी वस्तु उसीके पास रहनी चाहिये, जो उससे लोकका कल्याण करे, न कि वह उससे स्वयंके लिये भोग-विलासकी वस्तुओंका संग्रह करे। कामधेनु मुनिके लिये लोक-कल्याणकी वस्तु थी, उसीसे उन्होंने राजाका भी सत्कार किया था।

भोगवाद और आत्मवाद

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भारतीय संस्कृतिका लक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार या भगवत्प्राप्ति, और आजके जगत्का लक्ष्य है भोगप्राप्ति। इसीसे भारतीय सिद्धान्त है आत्मवाद या ईश्वरवाद और आजके जगत्का सिद्धान्त है भोगवाद। भगवान्ने गीतामें सर्वथा पतन या सर्वनाशका कारण बतलाया है भोगचिन्तन या विषयचिन्तनको। भगवान् कहते हैं—

ध्यायतो विषयान्मुसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

(गीता २।६२-६३)

‘भोगोंके—विषयोंके चिन्तनसे उन विषयोंमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्तिसे [उनको प्राप्त करनेकी] कामना पैदा होती है। कामना सफल होनेपर लोभ और उसकी विफलतामें—कामपर चोट लगनेपर क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध (या लोभ)—से सम्मोह होता है—पूरी मूढ़ता छा जाती है। मूढ़तासे स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृतिभ्रंश होनेपर बुद्धि मारी जाती है और बुद्धिके नाशसे सर्वनाश होता है।’

ये सर्वनाशके आठ स्तर हैं। इनमें सबसे पहला है विषयोंका—भोगोंका चिन्तन। इसीसे अन्तमें बुद्धिनाश होकर सर्वनाश होता है। भोग जिसके जीवनका लक्ष्य होगा, भोगवाद ही जिसका सिद्धान्त होगा—वह व्यक्ति हो, चाहे व्यक्तियोंका समुदाय समाज हो, समाजोंसे भरा देश हो, देशोंका समूह राष्ट्र हो या राष्ट्रोंका समुदाय विश्व हो—जहाँ भोगवाद है, वहाँ भोगचिन्तन है और जहाँ भोगचिन्तन है, वहीं परिणाममें सर्वनाश है। भगवान्ने भोगजनित सुखको पहले मधुर लगनेवाला, परंतु परिणाममें विषके सदृश बतलाया है। वे कहते हैं—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यन्तदग्रेऽमृतोपमम् ।

परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥

(गीता १८।३८)

विषयोंके साथ इन्द्रियोंका संयोग होनेपर जो पहले अमृतके समान [मधुर] लगता है, परंतु जो परिणाममें विषके तुल्य [कार्य करता] है, वह सुख राजस कहलाता है।

एक जगह भोग-सुखको भगवान्ने दुःखोंकी उत्पत्तिका स्थान—दुःखरूप फलका खेत बतलाया है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥

(गीता ५।२२)

अर्थात् इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न जो सब भोग हैं, वे निःसन्देह दुःखके उत्पत्ति-स्थान हैं तथा आदि-अन्तवाले अनित्य हैं, भैया अर्जुन! बुद्धिमान् पुरुष उनमें प्रीति नहीं करता।

अवश्य ही भारतीय संस्कृतिमें भोगका बहिष्कार नहीं है—अर्थ और कामका तिरस्कार नहीं है, परंतु वे जीवनके लक्ष्य नहीं हैं। भोग रहें, पर रहें धर्मके नियन्त्रणमें, और उनका लक्ष्य हो मोक्ष या भगवत्प्राप्ति। पुरुषार्थचतुष्टयमें इसीलिये अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारोंको स्थान है। धर्मनियन्त्रित अर्थ-काम भगवत्सेवामें नियुक्त होकर मोक्षकी प्राप्ति के साधन बनते हैं और वे ही ‘अर्थ-काम’ जीवनके लक्ष्य बनकर मनुष्यको घोर अशान्ति तथा चिन्तामय जीवन बितानेको बाध्य करके अन्तमें नरकोंकी यन्त्रणामें पहुँचा देते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—‘अर्थ’ और ‘काम’ में फँसे लोग कुत्ते और बन्दरोंके समान हो जाते हैं। (१।१८।४५) धनलक्ष्मी रहे, वह परम मंगलमयी है, पर वह तभी मंगलमयी है, जब सर्वव्यापी—प्राणीमात्रके रूपमें अभिव्यक्त भगवान् विष्णुकी सेविका होकर रहती है। नहीं तो, उसे अपनी भोग्या बनाकर तो मनुष्य महापाप करता है, जिससे उसका निश्चित पतन होता है।

हमारे इस ‘धर्म’ से किसी वादका लक्ष्य नहीं है या केवल अध्यात्मविचार ही धर्म नहीं है। धर्म उस

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

निष्ठा, विचार और क्रियापद्धतिका नाम हैं, जो सबको धारण करता है। जिससे मनुष्यका सात्त्विक उत्थान हो, जो प्राणीमात्रका हित तथा सुखका साधन हो तथा अन्तमें निःश्रेयस या मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला हो, वही धर्म है—यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। (वैशेषिक० १। २)

श्रीवाल्मीकीय रामायणमें भगवान् श्रीरामजी



लक्ष्मणजीसे कहते हैं—

धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके
समीक्षिता धर्मफलोदयेषु ।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे
भार्येव वश्याभिमता सपुत्रा ॥
यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसंनिविष्टा
धर्मो यतः स्यात् तदुपक्रमेत ।
द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके
कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता ॥

(अयोध्याकाण्ड २१। ५७-५८)

धर्मके फलस्वरूप सुख-सौभाग्यादिकी प्राप्तिमें जो धर्म, अर्थ और काम देखे जाते हैं, वे तीनों एक धर्ममें वर्तमान हैं। धर्मके अनुष्ठानसे ही तीनोंकी सिद्धि होता है, इसमें संदेह नहीं है। वैसे ही जैसे, धर्मके

अधीन रहनेवाली भार्या अतिथि-पूजनादिरूप धर्ममें, मनोऽनुकूल होनेसे काममें और सुपुत्रवती होकर अर्थमें सहायिका होती है। जिस कर्ममें धर्म, अर्थ, काम—तीनों संनिविष्ट न हों, परंतु जिससे धर्मकी सिद्धि होती हो, वही कर्म करना चाहिये। जो केवल अर्थपरायण होता है, वह लोकमें सबके द्वेषका पात्र बन जाता है और धर्मविरुद्ध कामभोगमें आसक्त होना भी प्रशंसा नहीं, निन्दाकी बात है।

भोगवादी इस धर्मकी परवा नहीं करता। उसका निश्चित सिद्धान्त ही होता है कामोपभोग—

कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥

(गीता १६।११)

विषयभोगोंमें लगे मनुष्य बस, यही सब कुछ है—
ऐसा निश्चितरूपसे मानते हैं।

यह आसुरी सम्पदावाले असुर-मानवका निश्चित सिद्धान्त है।

भोगवाद ही आसुरी सम्पदा है या आसुरी सम्पत्ति ही भोगवाद है।

भोगवादी या असुर-मानव धर्मको नहीं मानता, वह भगवान्‌का भजन तो करता ही नहीं। भगवान्‌ने उसके लिये कहा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

(गीता ७। १५)

‘आसुरीभावका समाश्रयण किये हुए मायाके द्वारा अपहृत ज्ञानवाले दूषित कर्म करनेवाले नराधम मूढ़ मुझको (भगवान्को) भजते ही नहीं।’ भगवान्को नहीं भजते, भोगमें ही लगे रहते हैं, इसीसे वे नराधम तथा मूढ़ हैं।

ऐसे भोगवादी असुर-मानवको जीवनमें मिलते हैं—चिन्ता, अशान्ति, कामनाजनित पाप तथा मृत्युके बाद नरकोंकी प्राप्ति तथा बन्धन। यथा—

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।

(गीता १६। ११)

होता है, इसमें संदेह नहीं है। वैसे ही जैसे, पशुओं में मृत्यु के अन्तिम क्षण तक अपरिमित चिन्ताओं से घिर

क्षिपाम्यजस्त्रमशभानासरीष्वेव योनिष ॥

भोगवादके विषसे आक्रान्त होनेके कारण ही आज भारतके बड़े-बड़े अध्यात्मवादी विद्वान् भी, पाश्चात्य भोगवादी विद्वान् बुरा न बता दें, इसके लिये अपनी संस्कृतिके परम्परागत सम्मान्य सिद्धान्तोंको

तथा इतिहासोंको भी यथार्थरूपमें प्रकाश करनेमें हिचकते हैं और उन्हें विकृत करके उनके मतानुकूल बतानेका प्रयत्न करते हैं। यह मस्तिष्कका दासत्व बड़ा ही शोचनीय तथा घातक है। इसीसे हमारे प्राचीन इतिहास तथा ऐतिहासिक घटनाओंके काल बदलनेकी और सबको तीन हजार वर्षके अन्दर लानेकी चेष्टा की जा रही है और दुःखका विषय है कि हमारे विद्वान् इन बातोंको स्वीकार करते चले जा रहे हैं। किसी भी व्यक्ति या राष्ट्रको यदि गिराना हो तो उसका प्रधान साधन है—उसके आत्मगौरव तथा आत्मविश्वासको मिटा देना—उसके अपनेमें हीनताका बोध करा देना। यह काम पाश्चात्य विद्वानोंने सफलतापूर्वक सम्पन्न किया और इसीसे भारत अपनेमें हीनताका बोध करके सहज ही मस्तिष्कका दासत्व स्वीकारकर परमुखापेक्षी तथा परानुकरणपरायण हो गया। विदेशी भाषा, विदेशी वेषभूषा, विदेशी खान-पान, विदेशी रहन-सहन तथा विदेशी ज्ञानको गौरवके साथ ग्रहण करना—हमारी इस आत्महीनताके बोधका ही सहज परिणाम है। पाश्चात्य विद्वानोंने भ्रमसे या किसी कुटिल अभिसन्धिसे इन तीन महाभ्रमोंका प्रतिपादन और प्रचार-प्रसार किया—

१. आर्यजाति बाहरसे आयी है। भारतवर्ष उसका मूल निवास-स्थान नहीं है।

२. चार हजार वर्ष पहलेका इतिहास नहीं है।

३. जगत्‌में उत्तरोत्तर विकास—उन्नति हो रही है।

मस्तिष्ककी गुलामीके कारण अधिकांश भारतीय विद्वानोंने इन तीनों बातोंको स्वीकार कर लिया। उसीका फल है कि आज हम भारतीयोंकी अपनी संस्कृति, अपने धर्म, अपने पूर्वज तथा अपने गौरवमय महाभारत, रामायणादि प्राचीन इतिहास, अपने धर्मग्रन्थ वेद-स्मृति-पुराण आदिपर अश्रद्धा और अनास्था बढ़ रही है और इसीसे भोगवादके विष-विस्तारमें बड़ी सुविधा हो गयी है। इसीसे आज हम तमसाच्छन्न होकर

सभी कुछ विपरीत देखने, विपरीत सोचने और विपरीत करनेमें गौरव मान रहे हैं। भगवान् ने गीतामें कहा है—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।

सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

(१८।३२)

‘अर्जुन! तमोगुणसे आवृत जो बुद्धि अधर्मको धर्म, [अवनतिको उन्नति, विनाशको विकास, पतनको उत्थान, पापको पुण्य इस प्रकार—] सभी अर्थोंमें विपरीत मानती है, वही तामसी बुद्धि है।’

आजका संसार भोगवादके विषसे जर्जरित होनेके कारण तमसाच्छन्न होकर इसी तामसी बुद्धिके द्वारा अपने कर्तव्यका निश्चय करता है और तदनुसार चल रहा है। भारतवर्ष भी आत्मविस्मृत होकर इसी तामसी बुद्धिका आश्रय ले रहा है!

भारतने यदि अपने पूर्वज ऋषि-महर्षि तथा अपनी प्राचीन संस्कृति एवं धर्मग्रन्थोंपर विश्वास करके अपनी अत्यन्त प्राचीन सर्वांगसम्पन्न सर्वांगसुन्दर आत्मवादी आदर्श संस्कृतिको न अपनाया तो इसका परिणाम उसके लिये तथा समस्त जगत्के लिये भी बहुत बुरा होगा; क्योंकि यही देश तथा यहींकी संस्कृति अनादिकालसे अध्यात्मप्रधान आत्मवादी रही है। आज भी वर्तमान जगत्की स्थितिसे असन्तुष्ट यूरोप तथा अमेरिकाके बहुत-से सज्जन सच्चे सुख-शान्तिकी प्राप्तिके लिये आत्मवादी भारतवर्षकी ओर ताक रहे हैं और बहुत-से तो यहाँ आ-आकर अध्यात्मकी शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। पर जब भारत ही भोगवादी हो जायगा, तब तो जगत्की सारी आशा ही लुप्त हो जायगी। भारत आज इसी भोगवादके मोहजालमें फँसा है। भारतके मनीषियोंको गम्भीरतापूर्वक इसपर विचार करके किसी प्रकाशमय पथका पता लगाकर उसपर आरूढ़ होना चाहिये। हरिः ॐ तत्सत्

अतएव 'मैपन' से कामको हटानेका यही सुन्दर साधन है कि भगवत्प्राप्तिकी इच्छाको अधिक-से अधिक प्रबल किया जाय। यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि चाहे सुख मिले, दुःख मिले, मान मिले, अपमान मिले, भोजन-वस्त्रादि मिले या न मिले—इसकी कोई परवा नहीं, किंतु भगवान्की प्राप्ति करके ही छोड़ेंगे। यह भाव जितना अधिक दृढ़ होगा, उतनी ही अधिक भोगेच्छाका नाश होगा। अतएव सर्वप्रथम अपना उद्देश्य सदृढ़ बनाना चाहिये।

जैसे कन्याका विवाह हो जानेपर वह पतिके घरको ही अपना घर मानती है, अपने माता-पिताके घरको नहीं; उसी प्रकार भगवत्प्राप्तिके कार्यको ही अपने जीवनका वास्तविक कार्य एवं उद्देश्य मानना चाहिये, न कि सांसारिक सुख-भोग एवं संग्रहको। परमात्माका घर ही हमारा वास्तविक घर है, अतएव परमात्माकी ओर ही पूरी शक्तिसे बढ़ना चाहिये। इस सम्बन्धमें अपना विचार पक्का कर लेना चाहिये, फिर तो सभी सुविधाएँ स्वतः उपलब्ध होंगी। बाधा डालनेवाले प्रथम श्रेणीके सहायक सिद्ध होंगे। अहंतामें परिवर्तन होनेसे भगवत्प्राप्तिका यह मार्ग बहुत ही सुगम हो जाता है। अपनी सुनिश्चित मान्यता कर लेनी चाहिये कि मैं भोगी, संग्रही नहीं हूँ। संसारका काम मेरा काम नहीं है। मैं तो भगवान्के पथका पथिक हूँ, साधक हूँ, जिज्ञासु हूँ। तत्त्वको प्राप्त करना, भगवान्के प्रेमको प्राप्त करना ही मेरा एकमात्र कार्य है। इस प्रकार अहंताके बदलते ही काम अपने वास-स्थानोंसे निकल भागेगा एवं साधन-पथकी सभी कठिनाइयाँ स्वतः समाप्त हो जायँगी। कामके वास-स्थानोंपर अनायास ही अधिकार हो जायगा।

पर हित पर उपकार भाव नित उपदेशों में रहते।
मित्र मित्रता विस्मृत करके अपनी धुन में बहते॥
करुणा, प्रेम और मानवता पंगु लगी अब होने।
शाश्वत, समता, सरल भावना नश्वरता में खोने॥
विषम तमस में भी अपने उर शुचिता को अपनाना।
चलो पथिक बन, डगर न छोड़ो जगत मुसाफिरखाना ॥ ३ ॥
कर विचार सच को स्वीकारो, भौतिकता परिहारो।
पूर्व प्रतिज्ञा गर्भवास की, उसको जरा विचारो॥
मानव जीवन मिला इसलिए चौरासी कट जाये।
जन्म-मृत्यु से हो छुटकारा भव बन्धन हट जाये॥
सांसारिक सुख क्षण भंगुर जो उनसे मत लिपटाना।
चलो पथिक बन, डगर न छोड़ो जगत मुसाफिरखाना ॥ ४ ॥

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें युगलतत्त्व

(गोस्वामी श्रीविष्णुकान्तजी महाराज, श्रीनिम्बार्कपीठ, प्रयाग)

भगवद्भावसे द्रवित होकर भगवान्‌के साथ चित्तका जो सविकल्प तदाकारभाव है, वही भक्ति है। भक्ति गौणी और शुद्धाके भेदसे दो प्रकारकी है। शास्त्रोंके नियमोंके अनुसार विधि-निषेध होनेसे गौणीके अनन्त भेद हैं। जो अनन्त होता है, वह एक ही माना जाता है। जैसे ब्रह्म अनन्त होते हुए एक हैं, वैसे ही भक्ति भी एक ही है, इसके भेद काल्पनिक हैं। भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण हो जानेके कारण भक्तिमें नियमवशवर्तिता नहीं होती। इनमें भी अनन्यता हो जाती है। शुद्धाको ही प्रेमाभक्ति, केवला भक्ति, अनन्याभक्ति, पराभक्ति आदि पदोंसे कहा गया है। भगवान्‌ श्रीनिम्बार्काचार्यके अनुसार भगवत्कृपासे भक्तोंमें जो प्रेमस्वरूपा भक्ति प्रकट होती है, वही उत्तमा, साधनरूपिका और पराभक्ति है—

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते

यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा।

भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः

सा चोत्तमा साधनरूपिका परा॥

नारदपांचरात्रमें भी कहा गया—

सुरर्षे विहितशास्त्रे हरिमुद्दिश्य या क्रिया।

सैव भक्तिरिति प्रोक्ता यथा भक्तिः परा भवेत्॥

भगवान्‌के लिये ही जो जगत्‌के सारे कार्य किये जाते हैं, वह पराभक्ति कही गयी है। यही भक्ति कृष्णप्रिया है और परमानन्ददायिनी है। नारदभक्तिसूत्रमें लिखा है—इस भक्तिको प्राप्तकर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है। भागवतमें कहा है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन” निष्काम हो या कामनाओंमें आसक्त हो अथवा मुमुक्षु ही क्यों न हो, उसे प्रगाढ़ भक्तिके द्वारा परमपुरुष भगवान्‌ श्रीकृष्णका ही भजन करते रहना चाहिये। मधुसूदन सरस्वतीजी भी यही कहते हैं—‘कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।’ भगवत्पाद शंकराचार्यजीका भी यही मत है—

श्रीकृष्णचरणाम्भोजं सत्यमेव विजानताम्।

जगत्सत्यमसत्यं वाप्नोति नेति मतिर्मम॥

श्रीकृष्णके चरणोंको ही मैं सत्य मानता हूँ। जगत् सत्य है या असत्य है—यह मेरा मत नहीं है।

भगवान्‌के अनेक रूप हैं, जिसमें राधिकासहित युगलरूप ही परमतत्त्व होनेके कारण पूज्य है तथा वह ही भगवन्निम्बार्काचार्यजीका आराध्य है। केवल कृष्ण ही उनके उपास्य नहीं; क्योंकि गौतमीयतन्त्रकी आज्ञा है—

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत्।

जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी नरः॥

जो गौरतेज राधिकाके बिना श्यामतेज कृष्णका पूजन-ध्यान और जप करते हैं, वे पापी हैं। ऋग्वेदके परिशिष्टमें भी कहा है—

‘राधया माधवो देवो माधवेन च राधिका विभ्राजते जनेष्वा।’

राधा माधवसे और माधव राधिकासे ही सुशोभित होते हैं। ‘अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा’ अर्थात् वामांगमें श्रीराधिका विराजमान (रहती) हैं। इस श्लोकमें श्रीनिम्बार्कभगवान्‌का भी यही अभिप्राय है। ये राधापति द्विभुज और नित्य गोलोकवासी हैं। ‘श्यामागोरी नित्यकिशोरी प्रीतम जोरी श्रीराधे’—महावाणी।

पद्मपुराणमें भी—

सदैव द्विभुजः कृष्णो न कदाचिच्चतुर्भुजः।

वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति॥

राधिका भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति और वृन्दावनाधीश्वरी हैं। भागवत-रासपंचाध्यायीमें शुकदेवजीने कहा है—‘आत्मारामोऽप्यरीरमतु’ आत्मा अर्थात् आह्लादिनी शक्तिमें रमण करनेवाले भगवान्‌ने रास किया। श्रीभट्टदेवजीके अनुसार ‘पराभक्ति रसवर्धिनी राधा सब सुख देनी’।

पराभक्तिको बढ़ानेवाली राधा सभी सुखोंकी दात्री हैं। भक्तिचन्द्रिकाके मतसे पराभक्ति ग्यारह प्रकारकी है—
(१) गुणमाहात्म्यासक्तिभक्ति, (२) रूपासक्तिभक्ति, (३) पूजासक्तिभक्ति, (४) स्मरणासक्तिभक्ति, (५) दास्या-सक्तिभक्ति, (६) सख्यासक्तिभक्ति, (७) कान्तासक्तिभक्ति,

ब्रजमें होली खेलत राधा-कृष्ण

(श्रीउमेशप्रसादसिंहजी)

ब्रजभूमि प्रेम और सौन्दर्यका दिव्यधाम है। यहाँ निवास करनेवाले गोप-गोपिकाएँ, गोपकुमार, गाय-बछड़े, वनके पशु-पक्षी सभी प्रेमके मूर्तिमान् विग्रह हैं। यहाँ राधा-कृष्णका प्रेम, नन्द-यशोदाका प्रेम, उनके प्रति भक्तोंका प्रेम जगजाहिर है। इस प्रेममय भूमिपर प्रेमोत्सवका सबसे बड़ा पर्व होलीका रंग अनुठा है।

ब्रजभूमिपर होलीका रूप देशके अन्य भागोंसे अलग है, जिसे देखनेके लिये देश-विदेशके दर्शक आते हैं। पिचकारियोंद्वारा टेसूके फूलोंसे बने रंगसे एक-दूसरेको रंगमय करना यहाँकी प्राचीन प्रथा है। पण्डित रूपकिशोरजी लिखते हैं—

रंग चुचात भये गात लाल बाला गुपाल महि दबदोरी।
खेल किशोरी हँसे घनश्याम सखा दै दै खोरी॥

यहाँ रंग-गुलालके साथ राधाजी और कान्हाजीकी टोलियोंके बीच घमासान मचता है तो सारा गगन-मण्डल लाल हो जाता है। इस लीलाका वर्णन करते हुए रसखानजीने लिखा है—

खेलत फाग सुहाग भरी अनुरागहिं लालन कों धरि कै।
मारत कुंकुम केसरि के पिचकारिन में रँग कों भरि कै॥
गेरत लाल गुलाल लली मनमोहिनी मौज मिटा करि कै।
जात चली रसखानि अली मदमस्त मनो मन कों हरि कै॥
मिलि खेलत फाग बढ़यो अनुराग सुराग सनी सुख की रमकै।
कर कुंकुम लै करि कंजमुखी प्रिय के दूग लावन कौ धमकै॥
रसखानि गुलाल की धूँधर में ब्रजबालन की दुति यों दमकै।
मनौ सावन माँझ ललाई के माँझ चहुँ दिसि तें चपला चमकै॥

राधा एवं कृष्ण कलाकारोंके प्रेरणास्रोत रहे हैं। होलीमें राधा एवं श्रीकृष्णके साथ ब्रज स्वतः याद आ जाता है। सूरदासने अनेक पदोंमें होलीके उमंगको दर्शाया है। कान्हा जब होली खेलते हैं, तब धरतीमाता राधारानीकी स्वर्ण पिचकारीसे छूटे रंगोंसे अपना शृंगार करती हैं। इन्हीं पलोंकी प्रतीक्षा करते-करते एक दिन ललिता सखीने राधारानीसे कहा—

तेरे आवैंगे आजु सखी हरि खेलन को फाग री।
सगुन संदेसों हौ सुन्यौ तेरे आंगन बोले काग री॥
मदन मोहन तेरे बस माई, सुनि राधे बड़भाग री।

बाजत ताल मृदंग झांझ डफ का सोवै उठि जाग री॥
चोबा चंदन लै कुमकुम अरु केसरि पैयाँ लाग री।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ राधा अचल सुहाग री॥

ब्रजमण्डलके बैठनमें राधा-कृष्णका प्राचीन मन्दिर है। यहाँके लोग ठीक उसी प्रकार होली खेलते हैं, जैसे बरसाने नन्दगाँवके हरियारे खेलते हैं। यहाँ शामको संगीत-समाज जुड़ता है। गाँवमें 'चौपाई' निकलती है। फिर होलीके गीत गाते हैं। ब्रजकी गोपिकाएँ रंग-गुलालकी चोट तो सह लेती हैं, परंतु मतवारे नयनोंकी चोट सहना कठिन हो जाता है। वे घूँघटकी ओटमें इन चोटोंको बचानेका प्रयास करती हैं—

मत मारो दूगन की चोट, रसिया होरी में मेरे लग जायेगी,
अबकी चोट बचाय गई हूँ, करि घूँघट की ओट।
सास सुने मेरी ननद लड़ैगी, तुममें भरे बड़े खोट,
पुरुषोत्तम प्रभु वहाँ जाय खेलो, जहाँ तिहारी जोट॥

होलीके दिन कालिन्दीपर एक ओर श्रीकृष्ण अपने सखाओं, गोपबालकोंके साथ हैं और दूसरी ओर राधा अपनी सखियोंके साथ आयी हैं। होलीमें वे एक-दूसरेको परस्पर स्नेहसिक्त गाली देते हैं। हाथोंमें स्वर्ण पिचकारी लेकर एक-दूसरेपर केसरमिश्रित रंग डालते हैं। अबीर-गुलाल उड़ते हैं। महाकवि सूरदासके अनुसार—

होरी खेलत यमुना के तट कुंजनि तट बनवारी।
दूत सखियन की मंडल जोरे श्री वृषभान दुलारी॥
होड़ा-होड़ी होत परस्पर देत हैं आनंद गारी।
भरे गुलाल कुम-कुम केसर कर कंचन पिचकारी॥

होली मनानेकी कई परम्पराएँ ब्रजके आँगनमें विकसित हुईं। कहीं उसने कोमल, मध्यम तो कहीं उग्र रूप लिया। वृन्दावनमें गुलाबोंके फूलोंकी पंखुड़ियोंसे रंगमंचपर राधा-कृष्ण होली खेलने लगे तो नन्दगाँव-बरसानामें महिलाएँ लठ चलाने लगीं। इसपर हास्यकवि काका हाथरसीने लिखा—

बरसानेकी होली देखो, हरियारोंकी टोली देखो।
टेसू के बसंती रंग में, भींगे लहंगा चोली देखो॥
त्रिया चलाती लाठी देखो, पिटते पूत त्रिपाठी देखो।
ब्रज अंचल की प्रथा पुरानी, होली की परिपाटी देखो॥

❀	शारदे!	चरणकमल	रज	दे!	ले	प्रणाम	गुण	दे!	❀
❀	कर	में	पुस्तक	वीणा	धारे!	शारदे!	चरणकमल	रज	दे!॥ २ ॥
❀	माता	तुझ	पर	तन	मन	दीन	छात्र	हम	तुम्हें
❀	विद्या		बुद्धि		प्रदे॥ १ ॥	प्यार	करो!	विद्या	दो
❀	नहिं	अदेय	तुझको	कछु	माता!	शरणागत		चित	दे!
❀	विद्यावारिधि		बद्धि		प्रदाता॥	शारदे!	चरणकमल	रज	दे!॥ ३ ॥

❁ श्रद्धापूर्वक गुरुके आदेशका पालन करनेसे जीवनका परम लक्ष्य स्वरूपस्थिति भी प्राप्त हो जाती है। वृन्दावनमें गिरिराजजीस्थित लक्ष्मणमन्दिरकी व्यवस्था एक बार अत्यन्त शोचनीय हो गयी। लोगोंने मनमाना कब्जा कर लिया। महन्तजी श्रीरामचरणदासजी महाराज हनुमानगढ़ी अयोध्यामें विराजते थे। उन्हें चिन्तित देख भक्तमालीजी जो उनके शिष्य थे, उन्होंने चिन्ताका कारण पूछा। महाराजजीने बताया कि वहाँकी व्यवस्था किसे सँभलावेँ—यही चिन्ता है। भक्तमालीजी तुरन्त कह उठे कि मेरे ज्येष्ठ गुरुभाईको वहाँ महन्त बना दें और मैं उनका मुख्तार बनकर सारी व्यवस्था देखूँगा। आप किसी बातकी चिन्ता नहीं करें। ऐसा ही किया गया। महाराजजीने वहाँ जाकर चालीससे अधिक मुकदमे लड़े, किंतु विपक्षियोंसे भी कोई द्वेषका भाव नहीं रखा। अन्तमें सब मुकदमोंमें जीत होकर मन्दिरकी सम्पत्ति खाली होनेकी स्थिति बनी तो दयापूर्वक सभी पूर्ववर्ती लोगोंको ही किराये इत्यादिपर रखकर व्यवस्था स्थापित कर दी। मन्दिरका भव्य निर्माण कराया, किंतु अपना नाम कहीं नहीं आने दिया। यह प्रपंचके बीच निर्विकार रहने और गुरुकी आज्ञाका पालन करनेसे आध्यात्मिक परमोपलब्धिका अनुपम उदाहरण है। ‘प्रेम’

प्रेरक-कथा—

दृढ संकल्प

(श्रीराजेशजी माहेश्वरी)

ठण्डसे ठिठुरती हुई, घने कोहरेसे आच्छादित रात्रिके अन्तिम प्रहरमें मोटरसाइकिलपर सवार एक नवयुवक अपने घर वापस जा रहा था। उसे चौराहेपर कचरेके ढेरमेंसे किसी नवजात शिशुके रुदनकी आवाज सुनायी दी, जिसे सुनकर वह स्तब्ध होकर रुक गया और उस ओर देखने लगा। वह यह देखकर अत्यन्त भावुक हो गया कि एक नवजात कन्याको किसीने कचरेके ढेरमें फेंक दिया है। अब उस नवयुवकके भीतर द्वन्द्व पैदा हो गया कि इसे उठाकर किसी सुरक्षित जगह पहुँचाया जाय या फिर इसे इसके भाग्यके भरोसे छोड़ दिया जाय। इस अन्तर्द्वन्द्वमें उसकी मानवता जाग्रत् हो उठी और उसने उस बच्चीको उठाकर अपने सीनेसे लगा लिया और उसे तुरन्त नजदीकके अस्पताल ले गया। वहाँपर उपस्थित चिकित्सकसे वह बोला कि आप इस नवजात शिशुकी जीवन-रक्षाहेतु प्रयास करें, यह मुझे नजदीक ही कचरेके ढेरमें मिली है। इसकी चिकित्साका सम्पूर्ण खर्च मैं वहन करनेके लिये तैयार हूँ। यह सुनकर डॉक्टरने उस नवजातको गहन चिकित्सा-कक्षमें रखकर इसकी सूचना नजदीकी पुलिस थानेमें दे दी।

कुछ समय पश्चात् पुलिसके दो हवलदार आकर उस नवयुवक जिसका नाम राकेश था, उससे कागजी खानापूति कराकर अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए चले गये। दूसरे दिन सुबह राकेश अपने घर पहुँचा और अपने माता-पिताको रातकी घटनाकी सम्पूर्ण जानकारी दी, जिसे सुनकर उसके माता-पिता भी स्तब्ध हो गये और कहा—‘आज न जाने मानवता कहाँ खो गयी है!’ राकेशकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि तुमने बहुत नेक काम किया है। वह नवजात जीवन-मृत्युके बीचमें संघर्ष करते हुए अन्ततः प्रभुकृपासे बच गयी। बच्चीको देखनेके लिये राकेशके माता-पिता भी अस्पताल गये।

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dh>
 उस लड़कीकी मौसूम चेहरा देखकर वे भावविह्वल हो

उठे और उन्होंने आपसमें निर्णय किया कि अपने परिवारके सदस्यकी तरह ही उसका पालन-पोषण करेंगे। इस सम्बन्धमें सभी कानूनी कार्यवाही राकेशने पूरी कर ली। बच्चीका नाम किरण रखा गया। कुछ वर्ष पश्चात् राकेशके माता-पिता उसके ऊपर शादी करनेके लिये दबाव डालने लगे। यह सब देखकर राकेशने एक दिन स्पष्ट तौरपर उन्हें बता दिया कि वह शादी नहीं करना चाहता और सारा जीवन इस बच्चीके पालन-पोषण और इसके उज्ज्वल भविष्यके लिये समर्पित करना चाहता है। राकेशकी इस जिदके आगे उसके माता-पिता हार मान गये।

किरण धीरे-धीरे बड़ी होने लगी और अत्यन्त प्रतिभावान् एवं मेधावी छात्रा साबित हुई। १२वीं कक्षा प्रथम श्रेणीसे उत्तीर्ण करनेके पश्चात् वह उच्च शिक्षाके साथ-साथ राकेशके पैतृक व्यवसाय दुग्ध डेरीका कार्य भी सँभालने लगी। उसने अपनी कड़ी मेहनत और सूझबूझसे अपने व्यवसायको बढ़ाकर उसे शहरके सबसे बड़े डेयरी फार्मके रूपमें विकसित कर दिया।

समय धीरे-धीरे व्यतीत हो रहा था, राकेशके मनमें किरणके विवाहकी चिन्ता सताने लगी। एक दिन उसने अपने इन विचारोंको किरणसे सामने रखा तो किरणने आदरपूर्वक उसे बताया कि अभी उसने विवाहके विषयमें कोई चिन्तन नहीं किया है, अभी फिलहाल उसका सारा ध्यान आप सबकी सेवा और अपनी पढ़ाई एवं व्यवसायकी उन्नतिके प्रति है। इसके बाद भी राकेशने कई बार इस बारेमें बात करनेका प्रयास किया, पर हर बार किरण उसे वही जवाब दे देती थी।

समय ऐसे ही बीतता गया और एक दिन अचानक ही हृदयाघातसे राकेशकी मृत्यु हो गयी। किरणके लिये यह वज्रपात-सरीखी बात थी। किसी तरह उसने अपनेको सँभाला। कई महीने बीत गये। राकेशकी एकमात्र वारिस होनेक कारण एक दिन

उन स्मृतियोंको चिरकालतक स्थायी रखनेके लिये उसने शहरमें एक सर्वसुविधासम्पन्न अनाथ-आश्रम बनवाया, जिसमें अनाथ बच्चोंके लालन-पालन, शिक्षा एवं चिकित्साकी समस्त सुविधाएँ उपलब्ध थीं और इसका निर्माण किरण ने अपने पितातुल्य स्वर्गीय राकेशकी स्मृतिमें कराया। ऐसे बच्चोंकी सेवाको ही उसने अपना ध्येय बना लिया, जो उसकी तरह परित्यक्त कर दिये गये थे और जिन्हें किसी राकेशकी आवश्यकता थी।

श्रीवृन्दावनधाम स्वाभाविक ही समस्त दोषोंसे मुक्त है; यही नहीं, वह दोष-कोषोंको भी गुणागार बना देनेकी सामर्थ्य रखता है। यद्यपि सब प्रकारके धर्मोंने मेरा बहिष्कार कर दिया है—मुझसे नाता तोड़ लिया है, फिर भी मैं आशा करता हूँ कि मेरा वह सब प्रकारसे पोषण करेगा और मेरे दुस्तर महापातक-समुद्रको शीघ्र ही सुखा डालेगा। अनेक जन्मोंकी महान् पुण्य-राशि जब फलीभूत होती है, तभी श्रीवृन्दावनधामके दर्शन होते हैं। किंतु जिस महाभाग्यवान् पुरुषको श्रीवृन्दावनधामके दर्शन हो जाते हैं, कर्मफल-दाता ईश्वर उसके सारे संचित कर्मोंको विफल कर देते हैं और ब्रह्मादिक भी अत्यन्त भक्तियुक्त होकर उसे नमन करते हैं। संसारमें जितनी भी पवित्र करनेवाली वस्तुएँ हैं, श्रीवृन्दावनधाम उन सबको भी पवित्र करनेवाला है। चराचर जितने भी जीव श्रीवृन्दावनधाममें रहते हैं, वे संसारके समस्त जीवोंमें श्रेष्ठतम हैं। श्रीराधिका-रमण श्रीब्रजेन्द्रनन्दनके भक्ति-रसका तो यह भण्डार ही है। अहा! वह समय कब होगा, जब परम सन्तोषपूर्वक मैं नित्य इस वृन्दावन-भूमिमें निवास करूँगा? इस वृन्दावनधामका ऐसा अलौकिक प्रभाव है कि इसमें निवास करनेवाले चराचर समस्त जीव-समूह आनन्द-समुद्रमें गोता लगाने लगते हैं। जो कोई भी किसी भी भावसे मृत्युपर्यन्त यहाँ रह जाते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ वैष्णवधामके मुकुट-मणि बन जाते हैं। [श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीप्रणीत 'श्रीवृन्दावनमहिमामृत' से]

‘जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे’

(डॉ० श्रीमृत्युंजयजी उपाध्याय)

मंगलमय विभुकी सृष्टिमें सब मंगलमय है। पूर्णसे कहीं अपूर्णकी सृष्टि होती है या पूर्णके योगसे कोई अपूर्ण रह सकता है? चौरासी लाख योनियोंमें भटकता हुआ जीव मानवतन पाता है। यह ईश्वरका अंश है—**‘ईश्वर अंस जीव अबिनासी।’** और देर-सबेर सीधे या प्रकारान्तरसे इसे उसीकी सत्तामें मिल जाना है। नदियोंका चरम उद्देश्य है—समुद्र-संगम या किसी बड़ी नदीमें मिल जाना। जीवका ध्येय है—परमात्तामें एकाकार होना। फिर न वह आवागमनके बन्धनमें पड़ता है और न जरा-मरणके चक्रमें ही पड़ता है। जिस प्रकार नदी समुद्रमें मिलकर उफन नहीं पाती, उसमें प्रवाह नहीं आता, वह समुद्रका धर्म गम्भीरता, धीरता पा लेती है, वैसी ही अवस्था जीवकी है—**‘जैसे सरिता मिलै सिंधुसे पुनि प्रवाह न आवै हो’** (सूरदास)। जीव जिस विराट्से आया था, उसीमें मिल गया, एकमेक हो गया—हिमजलके समान। बर्फ या पानीमें—प्रकारभेद है; मौलिक अन्तर कहाँ है? पानी ही मूल है और बर्फको भी पानी ही बनना है—

पानी ही ते हिम भया हिम ही गया बिलाय।

कबिरा जो था सो भया अब कुछ कहा न जाय॥

(कबीर-वचनावली)

जलके अथाह सागरसे एक बूँद जल लें और पुनः उसीमें डाल दें तो उसे खोज पाना उतना ही कठिन होगा, जितना जीवका परमात्तामें एकाकार होनेपर खोजना। कबीरने ठीक ही लिखा है—

हेरत हेरत हे सखी रह्यो कबीर हेराय।

बूँद समाना समुद्र में सो कत हेर्या जाय॥

(कबीर-वचनावली)

यह तो हुई आत्मा-परमात्मा, जीव-ब्रह्मके ऐक्यकी कहानी, जीवके मोक्षका आख्यान, पर इस ओर प्रवृत्त कैसे हुआ जाय, अपनी अधोमुखी वृत्तियोंको ऊर्ध्वमुखी कैसे बनाया जाय, आत्म-साधनाकी अलख कैसे जगायी जाय, आत्म-साक्षात्कारकी ज्योति किस प्रकार जलायी

जाय? ये प्रश्न बड़े विकट हैं और बुद्धिको विकल कर देते हैं। परंतु **‘जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ’** के लिये सारे पथ प्रशस्त हैं। अपेक्षा है धैर्यकी, सहिष्णुताकी और शनैः-शनैः अपने अहंको गलानेकी। अहं ही हमारी सबसे बड़ी बाधा है। वही सारे अनर्थोंकी जड़ है। हमारा अज्ञान हमारे अहंको सींच-सींचकर बड़ा बनाता चलता है। हम सोचते हैं कि हम ही सब कुछ कर रहे हैं—हम अपूर्व बल-वैभवशाली हैं। यह सोचना उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार टिटहरी कहती है कि वही आकाशको थामे हुए है, जबकि आकाशको थामनेकी जरूरत नहीं है। वह तो शून्य है। जीवके सारे कार्य-व्यापार बिना प्रभु-संवलित हुए शून्य ही हैं, जिनका न कोई कर्ता कहला सकता है और न भोक्ता। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने कहा था—**‘मामेकं शरणं ब्रज’**—तुम मेरी शरणमें आ जाओ। तुम्हारे सारे पाप-ताप धुल जायँगे। प्रभु ईसामसीहने कहा था—‘तुम मेरे पास आओ! मैं तुम्हें सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा।’ पर प्रभुकी शरणमें जानेका सवाल उतना सरल नहीं है। **‘जो घर जारे आपनो चलै हमारे साथ।’** **‘पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान।’** वाली बात है। सब-कुछको दाँवपर चढ़ाकर (सर्वोपरि अपने अहंको मिटाकर) ही प्रभुकी कृपाका अधिकारी बना जा सकता है। तभी शरणागतवत्सलकी अनुकम्पा पायी जा सकती है। भगवान् कृष्णने गीतामें अनासक्त योगका उपदेश देते हुए कह दिया है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

‘इसलिये तू निरन्तर आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्तव्य-कर्मको भलीभाँति करता रह; क्योंकि आसक्तिसे रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको पा लेता है। आसक्तिसे रहित अर्थात् कर्मफलके लगावसे अलग होकर स्थितप्रज्ञता और अनासक्तिकी चरमावस्था तब आती है, जब जीव जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-

इसी भक्तिके बलपर सरल, निरीह और अज्ञानी ब्रजकी गोपियोंने उद्धवके शुष्क ब्रह्मवाद, ज्ञानवाद और प्रकाण्ड पाण्डित्यकी धूल उड़ा दी। ज्ञान-गरिमाके मनीषी उद्धवको ब्रजकी धूलमें लोटना पड़ा। गोपियोंकी ‘उरमें माखन चोर गड़ै’, ‘निर्गुन कौन देस को बासी’ ‘निसिदिन बरसत नैन हमारे’—ऐसी आन्तरिक अभिव्यक्तियोंने न केवल उद्धवको सच्चा भक्त बना दिया, वरन् यह सिद्ध कर दिया कि भक्तिके लिये शुद्ध हृदय ही चाहिये, ज्ञानका बोझ नहीं। प्रभुके प्रति वैसी आस्था और कृपाका भाव भी तभी जगता है, जब भक्तकी विह्वल आत्मा पुकार-पुकार उठती है—‘**जाउँ कहाँ तजि चरन तम्हारे।’**

श्रीजानकीजीवनाष्टकम्

[‘श्रीजानकीजीवनाष्टकम्’ अज्ञातकर्तृक एक अत्यन्त भावपूर्ण प्राचीन स्तोत्र है। वस्तुतः अध्यात्मरामायणकी विषयवस्तुपर आधारित इस स्तोत्रके प्रारम्भिक सात श्लोक क्रमशः उसके सात काण्डोंका साररूप हैं तथा अन्तिम श्लोक उपसंहाररूप है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे अध्यात्मरामायणकी सम्पूर्ण विषयवस्तुका साररूप पुण्यस्मरण मानसपटलपर सहज अंकित हो जाता है—सम्पादक]

आलोक्य यस्यातिललामलीलां सद्भाग्यभाजौ पितरौ कतार्थौ । तमर्भकं दर्पकदर्पचौरं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ १ ॥

श्रुत्वैव यो भपतिमात्तवाचं वनं गतस्तेन न नोदितोऽपि । तं लीलयाह्लादविषादशून्यं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ३ ॥

जटायुषो दीनदशां विलोक्य प्रियावियोगप्रभवं च शोकम् । यो वै विसस्मार तमार्द्रचित्तं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ३ ॥

यो वालिना ध्वस्तबलं सकण्ठं न्ययोजयद्राजपदे कपीनाम् । तं स्वीयसन्तापसतप्तचित्तं श्रीजानकीजीवन्मानतोऽस्मि ॥ ४ ॥

यद्भ्याननिर्धृतवियोगवह्निर्विदेहबाला विबधारिवन्याम् । प्राणान्दधे प्राणमयं प्रभं तं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ५ ॥

यस्यातिवीर्याम्बधिवीचिराजौ वंशयैहो वैश्रवणो विलीनः तं वैरिविध्वंसनशीललीलं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ६ ॥

यद्वपराकेशमयखमालानरञ्जिता राजरमपि रेजे । तं राघवेन्द्रं विबधेन्द्रवन्द्यं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ७ ॥

एवं कृता येन विचित्रलीला मायामनष्येण नपच्छलेन । तं वै मरालं मनिमानसानां श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ८ ॥

जिनकी अविषया ललित लीलाओंका अवलोकनकर सौभाग्याभाजन माता पिता—महाराज दण्डश एवं

जिनकी अतिशय ललित लीलाओंका अवलोकनकर सौभाग्यभाजन माता-पिता—महाराज दशरथ एवं देवी कौसल्या कृतार्थ हो गये, जो कन्दर्पके दर्पका हरण करनेवाले हैं तथा शिशुरूपमें शोभायमान हो रहे हैं, उन जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥१॥ [महाराज दशरथके] द्वारा वनवासहेतु स्पष्टरूपसे न कहे जानेपर भी केवल इतना सुनकर कि 'महाराज वचनबद्ध हैं' जो [पिताके वचनगौरवके रक्षणार्थ] वन चले गये, जो स्वभावतः आह्लाद और विषादसे परे हैं; तथापि लीलाके अनुरूप आह्लादित अथवा दुःखित होनेका नाट्य करते हैं, उन जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥२॥ जटायुकी दीन दशाको देखकर जिनको अपनी प्रियतमा सीताका विरहजनित शोक ही विस्मृत हो गया, उन करुणाविगलित हृदयवाले जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥३॥ जिन्होंने बालिके द्वारा विनष्ट की गयी सामर्थ्यवाले सुग्रीवको वानरोंका अधिपति बना दिया। जिनका चित्त अपने आत्मीयजनोंके [अल्पतम] सन्तापसे [भी अत्यधिक] सन्तप्त हो उठता है, उन जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥४॥ देवशत्रु रावणकी वाटिकामें वियोगरूपी अग्निमें जल रही विदेहनन्दिनी जिनके ध्यानरूपी जलसे धुलकर शीतल हो गयीं और उन्होंने प्राण धारण कर लिये। उन प्राणस्वरूप, जानकीजीवन प्रभु श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥५॥ अहो! जिनके अलौकिक पराक्रमरूप सागरकी लहरोंमें अपने बन्धु-बान्धवोंसहित विश्रवापुत्र रावण विलीन हो गया, जिन्होंने लीलावश शत्रुओंका संहार करनेवाला स्वभाव धारण कर रखा है, उन जानकीजीवन श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥६॥ जिनके सौन्दर्यरूप चन्द्रमाकी किरणमालासे अनुरंजित [अयोध्याकी] राजलक्ष्मी अत्यधिक शोभासे सम्पन्न हुई, जो देवताओंसहित देवराज इन्द्रके भी वन्दनीय हैं, उन रघुकुलशिरोमणि जानकीजीवन प्रभु श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥७॥ अपनी मायासे मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होकर राजाके रूपमें जिन्होंने [सेतुबन्ध, रावणवध आदि] इस प्रकारकी चित्र-विचित्र लीलाओंको सम्पन्न किया, मुनिजनोंके मनरूपी मानसरोवरमें राजहंसकी भाँति स्वच्छन्द विहार करनेवाले उन जानकीजीवन प्रभु श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ॥८॥ [प्रेमक-शीतलकान्तकी पुराणिक]

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❁ भक्तिकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा—जो साधक भक्त हैं, अभी सिद्ध नहीं हुए हैं, अपनी इन्द्रियोंको जीतकर अपने वशमें नहीं कर सके हैं, उन्हें संसारके विषय काम-क्रोध आदि बार-बार बाधा पहुँचाते हैं। विषय अपनी ओर खींचते हैं। वह साधक बार-बार अपने मनको विषयोंसे अलग करता है, क्षण-क्षण नाम-संकीर्तन आदिका अभ्यास करता है। भक्तिके प्रतापसे वह भक्त प्रायः विषयोंके वशमें नहीं होता है, विषयोंसे कभी हारता नहीं है। जैसे ईंधनके ढेरको अग्नि जला डालती है, उसी प्रकार भगवान्की भक्ति पापराशिको जला डालती है। भगवदाश्रय लेनेपर पापोंका होना सम्भव नहीं रहता है, फिर भी कदाचित् कोई दोष बन जाता है तो उसे भगवान् ही नष्ट कर देते हैं। भक्तिको त्यागकर अन्य यज्ञ, तप, दानादिसे उस प्रकारकी सुख, शान्ति, भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है, जैसी कि शुद्ध प्रेमसे होती है। दान, तप, यज्ञ आदिको करते समय भक्तिका ही मुख्य लक्ष्य रहना चाहिये।

❁ भक्तिमय आचरणसे जबतक शरीर पुलकित न हो, अश्रुपात न हो, कण्ठ गद्गद न हो, तबतक हृदयके शुद्ध होनेकी सम्भावना नहीं रहती है। हृदयमें भगवत्प्रेम प्राप्त करनेकी इच्छा रखनी चाहिये, धीरे-धीरे बलवती इच्छा वैष्णवधर्मका आचरण करा लेगी। उससे भगवान्की कृपा अति सुखद और सुलभ हो जायगी। अपने समीपवर्ती मित्रोंको प्रभुके नाम-कीर्तन-सत्संगकी ओर आकृष्ट करके उनके सहयोगसे अपनी भक्तिको बढ़ाना चाहिये। भक्तिका दान करनेसे भक्ति बढ़ती है।

❁ भगवान् एकमात्र भक्तिके सम्बन्धको मानते हैं। अपनी अपेक्षा अपने भक्तकी महिमा बढ़ाते हैं, अतः अपने चरणरजसे सरोवरके जलको शुद्ध न करके शबरीके पद-रजसे शुद्ध कराया। जाति, विद्या, महत्त्व, रूप, यौवन—ये भक्तिके पाँच काँटे प्रसिद्ध हैं। जाति,

विद्या आदिका होना अच्छा है, पर अहंकार अच्छा नहीं है। जातिसे नीच, एक अक्षर पढ़ी नहीं थी, किसी भी दृष्टिसे उसका महत्त्व नहीं था। अति कुरूपा एवं वृद्धा थी, परंतु उसमें भक्ति थी और भगवान्ने भी नवधा-भक्तिका उपदेश उसे दिया। किसी ऋषिके सामने आपने नवधाका उपदेश नहीं दिया। सभी प्रकारके दोष नष्ट हो जाते हैं तब भक्ति होती है। यदि भक्ति नहीं है तो विद्या, तपस्या, ज्ञान आदिका कोई महत्त्व नहीं है।

❁ भगवान्के स्वरूप, पिता-माता, ब्राह्मण, सन्त, गुरुदेव, तुलसी, पीपल, मन्दिरस्थ देवोंको प्रणाम करना चाहिये। शरीरसे साष्टांग अथवा वाणीसे प्रणाम यह भी सम्भव न हो तो मन-ही-मनसे नमस्कार कर लेना चाहिये। इस प्रकार भक्तिसे युक्त जिसका जीवन है, वह मुक्तिदाता श्रीकृष्णके चरणोंको, प्रेमको पानेका अधिकारी है। उसे भक्ति अवश्य प्राप्त होती है। राजा बलिने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। अन्तमें भगवान्ने और देव-ऋषियोंने बड़ाई की। तब उन्होंने कहा कि हम तो प्रभु-चरणोंमें पूरा एक प्रणाम भी नहीं कर पाये। आप ऐसे करुणामय हैं कि कोई थोड़ा भी पूजन करे, थोड़ी-सी भक्ति करे तो आप उसे बहुत करके मानते हो।

❁ ज्ञान या भक्तिके द्वारा तीनों प्रकारके संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कर्म नष्ट हो जाते हैं। जीवन्मुक्त कर्मोंके फलसे लिप्त नहीं होता है, अतः वह मुक्त हो जाता है। भगवान् जब नेत्रोंके सामने आते हैं, तब श्रीकृष्ण अपने भक्तके नासिका आदिके सामने अपने सौन्दर्य, सुगन्ध, सुकुमारता, उदारता, करुणा आदि गुणोंको प्रकट कर देते हैं। भक्त जितना-जितना आस्वादन करता है, उतनी ही आस्वादनकी उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। उनके हृदयमें परमानन्दका सागर लहराने लगता है, वह स्वयं कृतार्थ हो जाता है और उसके दर्शन-स्पर्शसे अन्य जीव भी कृतार्थ हो जाते हैं।

['परमार्थ के पत्र-पुष्प' से साभार]

❁ सोलहवाँ सूत्र यह है कि शराब, तम्बाकू, चरस, स्मैक, गाँजा, भाँग—इन नशीले पदार्थोंका सेवन कतई न करें। आपका अपना यह पेट शरीररूपी मन्दिरका गर्भगृह है। इसे स्वच्छ रखिये, जिस समय जिस चीजकी आवश्यकता हो, वह दीजिये, शरीर सदैव निरोग रहेगा।

(श्रीसूदर्शनसिंहजी 'चक्र')

‘यहाँका अधिदेवता मर गया है।’ मेरे वे बन्धु स्वर्गाश्रमसे पधारे थे। उनकी व्यवस्था न होती तो हम इस पर्वतीय स्थानमें इस प्रकार रह नहीं पाते। वे मुझसे मिलने ही आये थे। यह कठिन चढ़ाई पार करके और

जलाना था, सच मान लेते ही और कम से कम दो रुपये अपना आश्रय किया जाय
Hinduism Discords Server <https://discord.gg/dharma1> MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

अपने लिये किसी अन्यकी अपेक्षा न हो; अपितु अपनेमें जो प्रेमास्पद है, उसीकी प्रीति अपना जीवन हो जाय। प्रीति और प्रीतमके नित्य-विहारमें ही अनन्त, अविनाशी, नित-नव रसकी अभिव्यक्ति होती है। उसकी उपलब्धि ही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति एकमात्र स्वाधीनताका सदुपयोग एवं स्वाधीन होनेमें है। यह जीवनका सत्य है। सत्यसे अभिन्न होनेके लिये यह ज्ञानपूर्वक अनुभव करना है कि संसारमें मेरा कुछ नहीं है, मेरा किसीपर कोई अधिकार नहीं है, अपितु मुझपर सभीका अधिकार है। बुराईरहित होनेसे सभीके अधिकारकी रक्षा स्वतः हो जाती है और भलाईका अभिमान तथा फल छोड़ देनेसे मानव स्वाधीन

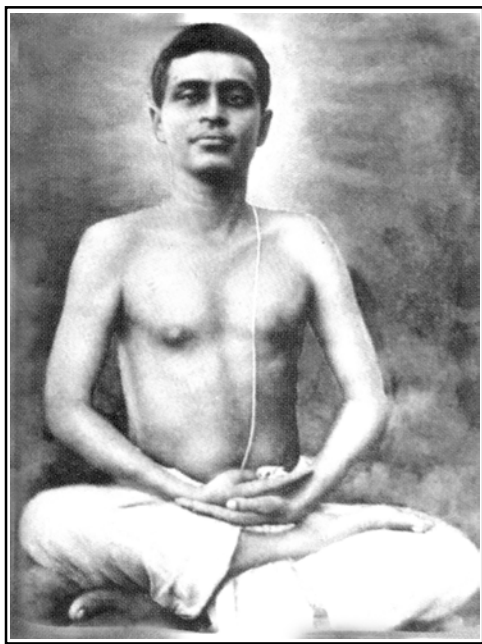
उदारता, स्वाधीनता एवं प्रेम ही जीवन है, जिसकी माँग बीजरूपसे मानवमात्रमें विद्यमान है। जीवनका जो सत्य है, उसे स्वीकार करनेसे ही भूलकी निवृत्ति एवं योग, बोध, प्रेमकी प्राप्ति होती है। यह अनुभव-सिद्ध सत्य है।

शशिरेख अलंकृत चन्द्रप्रभा मुख, मध्य अलौकिक हीर बनी है।
अवगाहन देव करैं सगरे, छविसागर सागर-क्षीर सनी है ॥
विष्णु करैं अगुवाइ सुरन्ह, शिव आजु बनें सब लोक धनी हैं।
जै-जै-जै महादेव की टेर मची, जैकारन्ह बीच में होड़ ठनी है ॥ १ ॥
शशि-शीस को मौर सुगौर सुठौर, सुशोभा 'शिवम्' शिव ठौर खड़ी है।
शुभ शान्त सुश्वेतन्ह वस्त्र सजी, सुषमा नन्दीश्वर हीर जड़ी है ॥
आठहुँ सिद्धि नवो निधि नाचहिं, ज्यों नचवारन्ह आँख गड़ी है।
विष्णु व इन्द्र व सिद्ध समस्त, गणादिक शोभित साख झड़ी है ॥ २ ॥
देव समाज स्व देविन्ह संग, सुगंग-अरु यमुनिहिं साथ लियो है।
विश्वावसु साथ गन्धर्वन्ह हाथ, दियो निज हाथन्ह छत्र लियो है ॥
गार्वहिं मंगल गान सुतान, विधान-निधान को व्याह रच्यो है।
यशगानन्ह सेतु रच्यो सब देवन्ह, शहनाइ सजी सम्मान सज्यो है ॥ ३ ॥
तब देखि विलक्षण रूप सुजान, सहर्ष सहस्रन्ह दीप सजायो।
कोटिक लक्ष सुकाम स्वरूप, लजावनहार दमादहिं पायो ॥
आरति कीन्ह अनन्त सुभाव, सुपुष्पन्ह पूजन हेतु चढ़ायो।
अगवानिन्ह आदर कीन्ह अनेकन्ह, भाँति सुशम्भु को मान बढ़ायो ॥ ४ ॥
करबद्ध कह्यो करिनी छमिबो, हम अज्ञ अजानन्ह को छमवारो।
तुम भाव 'शिवम्' हो अनाथन्ह नाथ, हे भावस्वरूप विराट अपारो ॥
अपराध हमार कुभावन्ह धार, अधर्म अधार क्षमा करि डारो।
निज जानि हमहिं स्वीकार करो, हे महेश उमापति नाथ हमारो ॥ ५ ॥
अस कहि मेना पगधरी, कीन्ह प्रणाम महेश।
लज्जित भड़ जिमि कुमदनी, प्रगट निहारि दिनेश ॥

संत-चरित—

एक विलक्षण विभूति—ब्रह्मर्षि श्रीश्री सत्यदेव

(श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव)



इस धरतीपर समय-समयपर अनेक ऐसी विभूतियाँ प्रकट हुई हैं, जिन्होंने मानवमात्रके कल्याण एवं अभ्युदयहेतु ही मनुष्य-शरीर धारण किया। ऐसी ही एक उच्चकोटिकी आध्यात्मिक विभूति थे, ब्रह्मर्षि श्रीश्री सत्यदेव।

बंगालके बारीशाल (इस समय बांग्लादेशमें) नामक स्थानमें शाक्त परम्पराके एक महान् साधक भैरवचन्द्र भट्टाचार्य थे। स्थानीय भैरवमन्दिरका एकमुण्डी आसन उनका साधना-स्थल था। उनके कोई पुत्र न होनेके कारण उन्होंने अपने दौहित्र कैलाशचन्द्रको अपना उत्तराधिकारी बनाया था। कैलाशचन्द्रकी पत्नी शारदा सुन्दरीको जब विवाह होनेके कई वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी कोई संतान नहीं हुई तो इस दम्पतीने अपने ग्रामके तारापीठमें माँसे संतानप्राप्तिहेतु प्रार्थना की। कहा जाता है कि देवीने उन्हें आशीर्वाद दिया कि स्वयं अपने अंशरूपसे इनकी प्रथम संतानके रूपमें जन्म लेंगी। इसके फलस्वरूप सन् १८८३ ई० में बारीशालके नवग्राममें ब्रह्मर्षि सत्येदवका अवतरण इस धरतीपर हुआ। शरत्-पूर्णिमाके चन्द्रमा-सी दिव्य कान्तिवाले, इस शिशुका नामकरण तदनुरूप शरदचन्द्र किया गया।

बालक शरदको बहुधा अपने ग्रामकी कीर्तन-

मण्डलीके हरिनाम-संकीर्तनमें श्रीकृष्णके रूपमें सजा दिया जाता था। कुछ समय पश्चात् शरदने अपने बाल सखाओंको लेकर अपनी कीर्तन-मण्डली बना ली। उसी अवस्थासे ध्यानमें भी मन लगने लगा था।

प्रारम्भसे ही मेधावी शरदकी संस्कृतमें विशेष रुचि थी; क्योंकि धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य अधिकांशतः संस्कृत भाषामें ही थे। थोड़े ही समयमें वे संस्कृतमें न केवल विभिन्न विषयोंपर धारा-प्रवाह बोलने लगे, अपितु मौलिक रचनाएँ भी करने लगे। विद्यार्जनके साथ ही साधना और तपस्याका क्रम भी चल रहा था।

पारिवारिक उत्तरदायित्वके निर्वाहहेतु वे एक विद्यालयमें संस्कृत शिक्षक बनकर धनोपार्जन भी करने लगे। पुरोहिती उनका वंशानुगत कार्य था। स्वाभाविक रूपसे इसे भी अपनाया। किंतु जीविकोपार्जनके लिये यज्ञ-पूजन आदि करते समय उन्हें लगता था कि क्या वे यथार्थ रूपसे अभी इन क्रियाओंके मर्मको समझ भी सके हैं ? क्या वे इस प्रकारकी पूजा सम्पन्न करके अपने यजमानोंका यथार्थ कल्याण कर पायेंगे ?

इस सबके बीच ही जगदम्बासे जीवनकी सार्थकताहेतु निरन्तर प्रार्थना करते रहते और जगदम्बाका तो जैसे अपनी इस दुलारी संतानके प्रति अधिक ही स्नेह था। इसीलिये कठिन परीक्षाओंके क्रमकी अगली कड़ीके रूपमें शरदचन्द्रका विवाह निस्तारिणी देवीसे करा दिया गया। वे सांसारिकतासे जितना दूर होना चाहते, उतने ही बँधते जा रहे थे। उन्हीं दिनों उन्हें एक स्वप्न आया। उन्होंने देखा—वे पूरी तरह बन्धनोंमें कसे हुए, एक खूँटेसे बँधे थे। सामने जगदम्बा खड़ी मुसकराती हुई कह रही थीं—‘देखा! कैसे कसकर बाँध दिया है।’ शरदचन्द्रने सोचा कि इन बन्धनोंमें तो वे स्वयं ही बँधे हैं, अतः स्वयं ही इन्हें खोल भी लेंगे। ऐसा ही उत्तर उन्होंने माँको दिया। वे और अधिक मुसकराती हुई बोलीं—‘अच्छा! ऐसा है तो खोलो। शरदचन्द्रने उन बन्धनोंको खोलनेका जितना प्रयास किया, वे उनमें उतना ही अधिक कसते गये। घबराहटमें उनकी श्वास अवरुद्ध होने लगी। वे समझ गये कि जिसने ये बन्धन दिये हैं, वे

धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रमें उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान है, उनका साहित्य। ‘सत्यप्रतिष्ठा’, ‘प्राण-प्रतिष्ठा’, ‘सत्यालोक’, ‘देशात्मबोध’, ‘देशमातृका-पूजन’, ‘सत्यदर्शन’, ‘पूजातत्त्व’, ‘शोक-शान्ति’, ‘मातृदर्शन’ प्रभृति उनकी रचनाएँ आध्यात्मिक जगत्में अत्यन्त समादृत हुईं। इनके अतिरिक्त ‘ईशोपनिषद्की

* 'साधन-समर' (कोड १९०१) गीताप्रेससे बँगला भाषामें प्रकाशित है और हिन्दी भाषामें प्रकाशनकी प्रक्रियामें है।

नामधारी सिक्खोंकी गोभक्ति

(संत श्रीनिधानसिंहजी आलिम)

ब्रिटिश शासन-कालकी बात है। पंजाबमें कौन्सिल ऑफ रीजेन्सी (Council of Regency)-का राज्य था। कौन्सिलके रेजिडेन्ट सर जॉन लारेंसने २४ मार्च सन् १८४७ ई०को एक आज्ञापत्रपर हस्ताक्षर किया था, जिसका आशय यह था कि अमृतसर शहरमें गोवध नहीं किया जायगा। उस आज्ञापत्रके निम्नलिखित वाक्यको एक ताम्रपत्र (Copper plate)-पर खुदवाकर उसे दरबार साहबके प्रवेशद्वारपर लटका दिया गया था—

‘Kine are not to be killed at Amritsar.’
यानी अमृतसरमें गोवध नहीं किया जायगा।

परंतु दो वर्ष बाद २४ मार्च सन् १८४९ ई०को अंग्रेजोंने पंजाबको अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया। इसके सिर्फ नौ ही दिन बाद यानी दूसरी अप्रैलको ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी राज्यप्रबन्ध कमेटी (Board of Administration)-ने यह आज्ञा निकाली कि अब गोहत्याके कानूनको बदल दिया जाय। अतएव इस आदेशके अनुसार ५ मई सन् १८४९ ई०को वायसरायने यह घोषणा कर दी कि 'भविष्यमें किसीको भी अपने किसी कार्यसे अपने पड़ोसीकी उन प्रथाओंमें बाधा डालनेकी अनुमति नहीं होगी, जिसके लिये उसके धर्ममें आज्ञा दी गयी है।' कम्पनीकी राज्य-प्रबन्धक कमेटीने यह भी कह दिया कि 'जिस प्रतिबन्धको पहले लागू किया गया था, वह केवल सिक्खराज्यके सम्मानकी दृष्टिसे था। अब सरकारी आज्ञा हो गयी कि प्रत्येक शहरके बाहर जानवरोंके वध करनेवाले गोहत्यारों (बूचड़ों)-के लिये एक जगह निश्चित की जाय।'

पंजाबपर ब्रिटिश अधिकार होते ही सरकारकी उपर्युक्त कार्रवाइयोंसे हिन्दू-सिक्ख जनताके हृदयपर बहुत बुरी चोट लगी, जिसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्यकी जड़ जम गयी।

अमृतसरमें हिन्दुओं और सिक्खोंकी ओरसे प्रबल आन्दोलन आरम्भ हो गया और कसाईखाना खुलने तथा गोमांस बेचनेकी अनुमति दिये जानेके समयसे १८७१ ई० के बीच अमृतसरमें कई बार हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। अतएव २२ मई १८७१ ई०को अमृतसरकी म्युनिसिपल कमेटीकी बैठकमें इस प्रश्नपर बड़ा वाद-विवाद हुआ कि 'जनताके आन्दोलनको रोकनेके उद्देश्यसे आगामी वर्षके लिये कसाईखानोंका लाइसेन्स रद्द कर दिया जाय या जारी रखा जाय। 'इस बैठकमें अमृतसर कमिश्नरीके कमिश्नर मि० डब्ल्यू० डेविसने कसाईखाना चालू रखनेके पक्षमें एक जोरदार व्याख्यान दिया। हिन्दू तथा सिक्ख सदस्योंने इसका घोर विरोध किया, परंतु बहुमतसे यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि कसाईखाना चालू रखा जाय।'।

जब १८४९ ई० से लेकर १८७१ ई० तक सारी चेष्टाएँ, जो कसाईखाना हटानेके उद्देश्यसे की गयी थीं, निष्फल गयीं, तब श्रीसतगुरु रामसिंहजीके कुछ कूके या नामधारी सिक्खोंने यह निश्चय किया कि गोहत्याका यह कलंक गुरुकी नगरीसे तबतक दूर नहीं किया जा सकता, जबतक कि अपने शीश बलिदान न किये जायँ। कानूनी और शान्तिमय साधन उनकी दृष्टिमें सब-के-सब व्यर्थ हो चुके थे। अतएव उन्होंने १५ जून १८७१ ई० की अँधेरी रातके लगभग ११ बजे कसाइयों (गोहत्यारों)-पर आक्रमण कर दिया तथा वध करनेके लिये बाँधी गयी सैकड़ों गौओंको मत्त करके स्वयं भाग गये।

पुलिसने उनके बदले अमृतसरके कुछ प्रतिष्ठित हिन्दुओं और श्रीनिहंगसिंहको सन्देशमें गिरफ्तार कर लिया। और उनपर इतना अत्याचार किया कि उन निरपराधोंने यह स्वीकार कर लिया कि १५ जूनकी रातको गोहत्यारोंका वध उन्होंने ही किया था। अतएव अपराध स्वीकार करनेपर अदालतने उन्हें सख्त सजा

सतगुरुकी आज्ञा सिरपर रखकर नामधारी सिक्ख अमृतसर पहुँचे। और जब उन्होंने अफसरोंके सामने अपने अपराध स्वीकार करते हुए यह कहा कि '१५ जूनकी रातको अमृतसरमें जो लोग मारे गये थे, उनके मारनेवाले हम हैं' तो उनके आश्चर्यकी कोई सीमा न रही। पहले तो उनकी इस बातपर विश्वास न किया गया, परंतु जब उन्होंने सारी घटनाका वर्णन कसो हुआ, तब विश्वास बन गया।

गिरफ्तार किया गया। परिणामस्वरूप जो निर्दोष सज्जन पुलिसके झूठे अभियोगके आधारपर अदालतसे सजा पा चुके थे, छोड़ दिये गये।

नामधारी वीरोंका मुकदमा—इन नामधारी या कूके वीरोंके विरुद्ध मेजर डब्ल्यू०जी० डेविस, सेशन जज और कमिश्नर अमृतसरकी अदालतमें २८, २९ और ३० अगस्त सन् १८७१ को मुकदमेकी सुनवायी होती रही और २१ अगस्तको फैसला सुनाया गया, जो इस प्रकार था—

फैसला

फाँसीकी सजा—

- १-बाबा लहणासिंह, अमृतसर ।
२-बाबा फतहसिंह, अमृतसर ।
३-बाबा हाकिमसिंह पटवारी, मौजा मूडे, जि०

अमृतसर ।

- ४-बाबा बिहलासिंह, नारली, जि० लाहौर।

काले पानीकी सजा—

- १-लहणासिंह वल्द मुसदासिंह।
- २-बुलाकासिंहका पुत्र लहनासिंह।
- ३-लालसिंह सिपाही।

(१) अड़बंगसिंह, (२) मेहरसिंह और (३) झंडासिंह—इन तीनोंको फरार घोषित किया गया।

फौजदारी कानूनकी दफा ३९८ के अनुसार सेशनस जजने अपना फैसला तसदीकके लिये लाहौर चीफकोर्टमें भेज दिया, जिसकी तसदीक जस्टिस जे० कैम्पबेलने ९ सितम्बर १८७१ ई० को और जस्टिस सी०आर० लिंडसेने ११ सितम्बर १८७१ ई० को की। अतएव कूका-दलके ये चार प्राणोत्सर्ग करनेवाले सिपाही अमृतसरमें हँसते-हँसते और सत श्री अकालकी जय-जयकार करते हुए शहीद हो गये, और दूसरे तीन अंडमन टापूमें भेज दिये गये। देश और गोमाताकी रक्षा और सेवाके उद्देश्यसे कूके वीरोंका यह उज्ज्वल बलिदान भारतवर्ष-जैसी ऋषि-भूमि और गोभक्तोंके देशमें विशेष माहात्म्य

MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma

साधनोपयोगी पत्र

(१)

विविध प्रश्नोंके उत्तर

सादर हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। गुरु बननेकी न तो मेरी योग्यता है और न मैं समर्थ ही हूँ; अतः यदि आपने भूलसे मुझमें गुरुकी भावना कर ली हो तो उसे छोड़ दें और मुझे अपना मित्र मानकर ही पत्र-व्यवहार करें।

उत्तर शीघ्र देनेके लिये लिखा, सो क्या किया जाय। पत्र बहुत आते हैं। मुझे समय कम मिलता है, इस कारण देर हो ही जाती है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) ईश्वर सर्वसमर्थ और सर्वज्ञ है, अतः वह निर्गुण भी है और सगुण भी। समस्त दिव्य गुणोंका केन्द्र वही है। उसकी सत्तासे ही सबकी सत्ता है।

(२) भगवान्की शक्ति-विशेषका नाम माया है, इसको प्रकृति भी कहते हैं। गीता अध्याय ७ श्लोक ४ में इसे अपरा प्रकृतिके नामसे और श्लोक १४ में गुणमयी मायाके नामसे कहा गया है। इससे छुटकारा पानेका उपाय उसी श्लोकमें एकमात्र भगवान्की शरण लेना, उन्हींको अपना सर्वस्व मानकर सर्वभावसे उनका हो जाना बताया गया है।

(३) मनको जीतनेमें असमर्थताका अनुभव इसलिये होता है कि प्राणी विषयोंमें सुखकी आशा रखता है, उसकी कामनाको अपनी आवश्यकता मानकर उसे पूरी करना चाहता है और बुद्धिके ज्ञानकी अवहेलना करता रहता है। यदि ऐसा न करके विवेकयुक्त बुद्धिके अनुसार काम करे और कामना-त्यागसे मिलनेवाली परम शान्तिकी लालसाको सबल बना ले तो मन बड़ी सुगमतासे अपने-आप वशमें हो जाता है।

(४) भगवान्में श्रद्धा घटनेका कारण, जिनपर विश्वास नहीं करना चाहिये; उनपर विश्वास करना, नास्तिकोंका संग करना और उसके परिणामकी ओर नहीं देखना ही है।

(५) विषयोंका त्याग करनेमें असमर्थता तभीतक रहती है, जबतक उनसे सुखकी आशा है।

(६) भावकी शुद्धिसे मन शुद्ध होता है, भगवान्में श्रद्धा-विश्वास मनको शुद्ध बनानेमें सहायक है। भगवान्की कृपाशक्ति प्रत्येक मनुष्यको शुद्ध बनानेमें लगी है; पर मनुष्य अभिमानवश अपनेको उसके सम्मुख नहीं करता, अपनेको भगवान्की कृपापर नहीं छोड़ता। इसी कारण विलम्ब हो रहा है। दूसरोंके दोषोंका दर्शन, श्रवण, चिन्तन और वर्णन मनकी अशुद्धताको बढ़ाता है। अतः इसका त्याग परम आवश्यक है।

(७) प्रामाणिक और शुद्धतापूर्वक कार्य करनेवालेको वह सफलताकी परिस्थिति नहीं मिलती, जो झूठ-कपट करनेवालेको मिलती है—यह मान्यता या ऐसा समझना निराधार और गलत है; क्योंकि बहुत-से ऐसे मनुष्य भी देखनेमें आते हैं, जो झूठ-कपट करनेके लिये सर्वथा तैयार हैं और करते हैं, तो भी वे महादरिद्री और दुखी हैं। और ऐसे लोग भी देखनेमें आते हैं, जो झूठ-कपट नहीं करते तो भी बड़े सम्पत्तिशाली हैं। साधकके जीवनमें तो सम्पत्ति या किसी प्रकारकी परिस्थितिका कोई महत्त्व ही नहीं रहना चाहिये।

(८) जातिमें विषमता मनुष्यने स्वयं ही स्थापन कर ली है। परमात्माने जो कुछ किया है, वह तो प्राणियोंके कर्मफल-भोगके अनुरूप उनके हितके लिये ही किया गया है।

(९) अपना पूर्वजन्म जाननेकी इच्छामें कोई लाभ नहीं है, अतः इस इच्छाका त्याग कर देना चाहिये। पूर्वजन्म तो अनन्त हो चुके हैं।

(१०) दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिके उपाय प्रभुपर अनन्य विश्वास, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचारका निष्कामभावसे पालन करना है।

(११) जिस धर्मके हाससे भगवान्का अवतार होता है, वैसे हासका समय अभी नहीं आया है; क्योंकि कलियुगका समय है, अभी तो अधर्म और भी बढ़ सकता है; जब आवश्यक होगा, तब भगवान् निश्चय ही प्रकट होंगे—इसमें सन्देह नहीं। उनसे कुछ छिपा नहीं है।

(१२) गीता अ० ४ श्लोक ३३ में जिस ज्ञानके

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।१ बजेतक	शनि	स्वाती रात्रिमें ६।५४ बजेतक	२० अप्रैल	सायन वृषका सूर्य दिनमें ४।१७ बजे।
द्वितीया " १।५४ बजेतक	रवि	विशाखा " ६।३५ बजेतक	२१ "	भद्रा रात्रिमें १।३५ बजेसे, वृश्चिकराशि दिनमें १२।३९ बजेसे।
तृतीया " १।१६ बजेतक	सोम	अनुराधा " ६।४५ बजेतक	२२ "	भद्रा दिनमें १।१६ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।२४ बजे, मूल रात्रि में ६।४५ बजेसे।
चतुर्थी " १।७ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा " ७।२४ बजेतक	२३ "	धनुराशि रात्रिमें ७।२४ बजेसे।
पंचमी " १।२९ बजेतक	बुध	मूल " ८।३३ बजेतक	२४ "	मूल रात्रिमें ८।३३ बजेतक।
षष्ठी " २।२३ बजेतक	गुरु	पू०षा० " १०।१० बजेतक	२५ "	भद्रा दिनमें २।२३ बजेसे रात्रिमें ३।३ बजेतक, मकरराशि रात्रिशेष ४।४१ बजेसे।
सप्तमी " ३।४३ बजेतक	शुक्र	उ०षा० " १२।१४ बजेतक	२६ "	× × × × ×
अष्टमी सायं ५।२७ बजेतक	शनि	श्रवण " २।३७ बजेतक	२७ "	श्रीशीतलाष्टमीव्रत।
नवमी रात्रिमें ७।२३ बजेतक	रवि	धनिष्ठा रात्रिशेष ५।१२ बजेतक	२८ "	कुम्भराशि दिनमें ३।५४ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें ३।५४ बजे, भरणीमें सूर्य दिनमें ८।३० बजे।
दशमी " ९।२७ बजेतक	सोम	शतभिषा अहोरात्रि	२९ "	भद्रा दिनमें ८।२५ बजेसे रात्रिमें ९।२७ बजेतक।
एकादशी " ११।२७ बजेतक	मंगल	शतभिषा प्रातः ७।४९ बजेतक	३० "	मीनराशि रात्रिमें ३।४१ बजे, वरूथिनी एकादशीव्रत (सबका), श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती।
द्वादशी " १।१२ बजेतक	बुध	पू०भा० दिनमें १०।१७ बजेतक	१ मई	× × × × ×
त्रयोदशी " २।३७ बजेतक	गुरु	उ०भा० " १२।३० बजेतक	२ "	भद्रा रात्रिमें २।३७ बजेसे, प्रदोषव्रत, मूल दिनमें १२।३० बजेसे।
चतुर्दशी " ३।३३ बजेतक	शुक्र	रेवती " २।१९ बजेतक	३ "	भद्रा दिनमें ३।६ बजेतक, मेषराशि दिनमें २।१९ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें २।१९ बजे।
अमावस्या रात्रिशेष ४।१ बजेतक	शनि	अश्वनी " ३।४१ बजेतक	४ "	अमावस्या, मूल दिनमें ३।४१ बजेतक।

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदारात्रिमें ३।५६ बजेतक	रवि	भरणी दिनमें ४।३२ बजेतक	५ मई	वृषराशि रात्रिमें १०।३७ बजेसे।
द्वितीया " ३।२२ बजेतक	सोम	कृत्तिका " ४।५३ बजेतक	६ "	× × × × ×
तृतीया " २।२० बजेतक	मंगल	रोहिणी " ४।४६ बजेतक	७ "	मिथुनराशि रात्रिशेष ४।२९ बजेसे, श्रीपरशुरामजयन्ती, अक्षयतृतीया।
चतुर्थी " १२।५३ बजेतक	बुध	मृगशिरा " ४।११ बजेतक	८ "	भद्रा दिनमें १।३६ बजेसे रात्रिमें १२।५३ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी " ११।५ बजेतक	गुरु	आर्द्रा दिनमें ३।१८ बजेतक	९ "	आद्य जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य-जयन्ती।
षष्ठी " ९।२ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु " २।४ बजेतक	१० "	कर्कराशि दिनमें ८।२३ बजेसे, श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती।
सप्तमी सायं ६।४५ बजेतक	शनि	पुष्य " १२।३८ बजेतक	११ "	भद्रा सायं ६।४५ बजेसे, श्रीगंगासप्तमी, कृत्तिकाका सूर्य रात्रिमें ३।३१ बजे, मूल दिनमें १२।३८ बजेसे।
अष्टमी दिनमें ४।२० बजेतक	रवि	आश्लेषा " ११।२ बजेतक	१२ "	भद्रा प्रातः ५।३२ बजेतक, सिंहराशि दिनमें ११।२ बजेसे।
नवमी " १।५१ बजेतक	सोम	मघा " ९।२१ बजेतक	१३ "	श्रीसीतानवमी, श्रीजानकी-जयन्ती, मूल दिनमें ९।२१ बजेतक।
दशमी " ११।२६ बजेतक	मंगल	पू०फा० " ७।४२ बजेतक	१४ "	भद्रा रात्रिमें १०।१६ बजेसे, कन्याराशि दिनमें २।५६ बजेसे।
एकादशी " ९।६ बजेतक	बुध	उ०फा० प्रातः ६।९ बजेतक	१५ "	भद्रा दिनमें ९।६ बजेतक, मोहिनी एकादशीव्रत (सबका), वृष-संक्रान्ति दिनमें २।३७ बजे।
द्वादशी प्रातः ६।५८ बजेतक	गुरु	चित्रा रात्रिमें ३।४० बजेतक	१६ "	तुलाराशि दिनमें ४।१३ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी रात्रिमें ३।३३ बजेतक	शुक्र	स्वाती " २।५४ बजेतक	१७ "	भद्रा रात्रिमें ३।३३ बजेसे, श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत।
पूर्णिमा " २।२५ बजेतक	शनि	विशाखा " २।२९ बजेतक	१८ "	भद्रा दिनमें ३।० बजेतक, श्रीबुद्धपूर्णिमा, श्रीबुद्धजयन्ती, वृश्चिकराशि रात्रिमें ८।३५ बजेसे, वैशाखस्नान समाप्त।

कृपानुभूति

‘जाको राखे साइयाँ, मार सकै न कोय’

दिनांक १९ मार्च २०१७ (रविवार)-की बात है, मथुरा नगरके मसानी स्थित चित्रकूटपर विगत वर्षोंकी भाँति 'होली-मिलन उत्सव' दिव्य-भव्यरूपमें आयोजित हुआ। फूलोंकी होली, वृद्धजन-सम्मान, सांस्कृतिक लोकगीतोंकी प्रस्तुतिके पश्चात् रात्रि १० बजे 'कवि-सम्मेलन' के द्वितीय चक्रका समारम्भ हुआ। प्रथम पंक्तिकी तीसरी कुर्सीपर मैं मन्त्र-मुग्ध होकर सरस्वती-पुत्रोंकी वाणीसे आबद्ध था। काव्यगत आनन्दके क्षणोंमें कुर्सीपर बिना पीठ लगाये मैं सिरों-भागसे आगे झुककर मंचपर एकटक दृष्टि गाड़े रसानुभूतिके किसी भी अवसरको निकलने नहीं देना चाह रहा था।

मुझे नहीं पता था कि मेरे सिरके ऊपर १५ फुटकी ऊँचाईपर पंखा घन्नाफेरी ले रहा है। कार्यक्रम भी समापनके चक्रमें था। अधिकांश लोग कविता-पाठके श्रवणमें तो कुछ भोजनके आस्वादनमें मस्त थे। हम 'बहुत अच्छे-बहुत अच्छे' शब्दोंसे अपना दायँ हाथ उठाकर अन्य रसिक श्रोताओंके साथ स्वरसे स्वर मिलाकर दाद दे रहे थे। अचानक मुझे लगा कि रात्रिमें भटका कोई कबूतर अथवा बाज पक्षी अपने पंखोंसे मेरे सिरके दायें भागपर भूलसे आकर फड़फड़ाहट कर रहा है। सहज सम्वेदनात्मक प्रतिक्रिया स्वरूप मेरा सिर बचावकी मुद्रामें नीचे झुक गया। न जाने कब और कैसे दायें हाथने स्वतः प्रतिरोधीकी भूमिकामें सहज आगेकी अँगुलियोंसे धकेलनेसे अनुभूति करायी कि मुड़ी पंखुड़ियोंके साथ मोटरसहित पूरा सीलिंग फैन मेरे आगे ६-७ फुटकी दूरीपर खाली जगहमें जा गिरा है। सच तो यह है कि मुझे इस अनायासके घटनाक्रमके सचपर विश्वास भी नहीं हो रहा था।

किया कि यह बाज पक्षी नहीं प्रत्युत साक्षात् कालरूपी बाजने सिरपर झपट्टा मारा था, परन्तु अलक्ष्य ईश्वरीय शक्तिने मुझ मन्त्र-मुग्धकी रक्षा कर ली है ! उसने रक्षा कैसे की, यह तो वही जाने; पर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न था। सन्नाटा भरता भारी-भरकम पंखा भला सिरपर गिरे और चोट नहीं आये, कदापि सम्भव नहीं ! मैं चोटको समझनेका प्रयास कर रहा था, शरीरके उस-उस अंगपर अपने सीधे हाथको जोर देकर फिराया तो ज्ञात हुआ कि सिरके दाँयीं ओर एवं बायीं ओर बालोंके निकट हलकी खरोंच लगी है, जो सिरपर गिरे भारी पंखेकी मूड़ी हुई पंखुड़ीका परिणाम थी।

यह एकान्तिक घटना नहीं थी, प्रत्युत सम्पूर्ण पण्डाल स्तब्ध रह गया और कुछ क्षणके लिये सबका ध्यान एक ही ओर केन्द्रित हो गया, सभी गतिविधियाँ ठहर गयी थीं। मुझे चन्द क्षणोंमें चारों ओरसे घेर लिया गया। कार्यक्रमके अध्यक्ष एवं सचिव महोदयने मेरे मना करनेपर भी बड़ी तन्मयता एवं आत्मीय भावके साथ एक वाहनसे प्राइवेट अस्पताल भेजा और प्राथमिक उपचार कराया। ईश्वरीय कृपाकी अनुभूति करानेवाली इस घटनाका अनुभवकर ये पंक्तियाँ बरबस मेरी जबानपर बार-बार आने लगीं—

होनी तो होकर रहे अनहोनी न होय।

जाको राखे साइयाँ मार सके न कोय ॥

आश्चर्य तो यह है यदि कोमल फूलसे भी किसीके सिरपर मारा जाय तो उसका भी थोड़ा-सा आघात होता है, परन्तु ऊपरसे सिरपर गिरे वजनी पंखेकी थोड़ी भी चोट मुझे अनुभव नहीं हुई, इस करिश्माई घटनाने मुझमें ईश्वरमें अपरिमित आस्था एवं विश्वास जगाया है कि वे सदा-सर्वत्र अपने

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईमानदारी

बात पहलेकी है। श्रीरंगलालजीकी आसामके एक शहरमें दूकान थी। कपड़ा-गल्ला-सोना-चाँदी-किराना सभी चीजें वे बेचते थे। सच्चाई और ईमानदारी उनके स्वभावमें थी। असली माल देना, पूरा तौलना उनकी प्रतिज्ञा थी। इससे ग्राहकोंके हृदयमें उनपर पूरा विश्वास था और इससे उनका कारोबार छोटा होनेपर भी बड़ी शान्तिसे तथा सुचारुरूपसे चलता था, कोई झंझट नहीं था और गृहस्थीका खर्च आसानीसे निकल जाता था। वे बहुत पैसेवाले नहीं थे, पर सहृदय थे। उनकी पत्नी भी वैसी ही थीं। एक छोटा लड़का था। उनकी सच्चाईपर विश्वासके कारण आसपासके सभी लोग तथा उच्च अंग्रेज अधिकारीतक उनको मानते थे।

एक बार वहाँकी सरकारने पुलिस तथा जेल आदिके राशनके लिये टेण्डर माँगे। एक दूसरे बड़े व्यापारी थे, वे ही यह सब काम किया करते थे और अधिकारियोंसे मिलकर ऊँचे भावके टेण्डर मंजूर करा लेते तथा राशनकी चीजोंमें भी मिलावट करते थे। इसमें उन्होंने बहुत धन कमाया था। एक बार वे पकड़े गये। ऊपरके अंग्रेज अधिकारियोंको पता लगनेपर उन्होंने इनके टेण्डर ही लेने अस्वीकार कर दिये। रंगलालजीकी ईमानदारी तथा सच्चाईकी बात चारों ओर फैली थी, इससे उच्च अधिकारियोंने उनसे टेण्डर माँगे। उनके लिये यह नया काम था। नीचेके अधिकारी उस बड़े व्यापारीको साथ ले जाकर उनसे मिले और उनको बताया—‘आप ऊँचे भावके टेण्डर दीजिये और मालमें भी मिलावट कीजिये। हमलोगोंका हिस्सा रख दीजिये। इससे चौगुनी आमदनी होगी। आप एक ही वर्षमें मालामाल हो जायँगे।’ रंगलालजीको यह बात नहीं जँची, उन्होंने कहा—‘न तो मैं ऊँचे भावके टेण्डर दूँगा, न मालमें मिलावट ही करूँगा।’ उन अधिकारियों और उस व्यापारीने रंगलालजीको घर आयी लक्ष्मीका तिरस्कार करनेकी बेवकूफी न करनेके लिये बहुत समझाया। पर

बेईमानी-चोरीकी बात उनकी समझमें ही नहीं आयी। इसपर उन लोगोंने कहा—‘अच्छी बात है, आप कुछ भी न कीजिये। आप सिर्फ अपना नाम दे दीजियेगा। सारा सप्लाईका काम ये व्यापारी कर लेंगे और इस नामके एवजमें आप तीन वर्षतक पच्चीस हजार रुपये सालाना लेते रहिये। वह भी छः-छः महीनेका अग्रिम।’ उस समय पच्चीस हजार रुपये बहुत बड़ी चीज थी, पर रंगलालजी इस लोभमें नहीं पड़े और प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। उनकी इस मूर्खतापर वे लोग बहुत दुखी हुए। रंगलालजीने उचित भावके टेण्डर दिये। उन लोगोंने बहुत प्रयास किया कि इनके टेण्डर स्वीकृत न हों, पर रंगलालजीने जाकर संकेतमें बड़े अधिकारीको सब बातें बता दीं। अतः उनका टेण्डर मंजूर हो गया। इस सच्चे व्यापारमें उन्हें प्रतिवर्ष केवल आठ हजार रुपये बचते थे। साहबने उनकी ईमानदारी तथा सच्चाईपर प्रसन्न होकर ठेकेका तीन वर्षका समय पूरा होनेपर उन्हें दस हजार रुपये इनामके और दिलवाये तथा आगेके लिये भी उन्हींको नियुक्त कर दिया। यों सत्यकी रक्षा तथा विजय हुई।—रामकुमार अग्रवाल

(२)

कर्तव्यनिष्ठा

रेलवेके एक अधिकारीकी कर्तव्यनिष्ठाकी बात है। जूनागढ़के नवाबके व्यवहारके कारण गैर-मुस्लिम लोग गाँव छोड़कर चले गये थे। सर्वत्र निस्तब्धता थी। रेलवे क्वार्टरमें रहनेवाले इस अधिकारीके दरवाजेको आधी रातके समय किसीने खटखटायी। इन्होंने दरवाजा खोला। पाँच बुर्काधारी हाथोंमें रिवाल्वर लिये खड़े थे। उनमेंसे एकने कहा—‘घबराना नहीं, हमें आपसे कुछ काम है।’

अधिकारी आश्चर्यमें डूब गये, साथ ही कुछ घबराये भी। परंतु प्रसंगको समझकर ऊपरसे स्वस्थता धारण करके वे उन लोगोंको अन्दर ले गये। स्वयं मुँहमें सिगरेट लेकर उन लोगोंके सामने सिगरेटका डिब्बा रख दिया। उनमेंसे एकने कहा—‘साहब! हमें सिगरेट देकर आप हमारे मुख

गुलाबबाईने आँसू पोंछकर कहा—‘बहनजी! आपकी तो मेरे प्रति सदा ही प्रीति है। आप काम-काजमें नहीं आ सकीं, इससे क्या प्रीति कम थोड़े

इस घटनाको घटे बहुत साल हो गये हैं। उनका लड़का अब अच्छी कमाई कर रहा है। उसकी शादी भी हो गयी है। मजेमें है। पर मेरे हृदयपर उनकी जो छाप पड़ी, वह सदा अमिट रहेगी।—रामप्यारी देवी

अपने हाथोंसे घाव धोकर मवाद निकालकर दवाई लगाकर पट्टी बाँध दी और अधिकारके साथ यह कहा—‘तुम्हें रोज आकर मेरी सेवा स्वीकार करनी होगी।’ मैं क्या कहता? कहनेके लिये मेरे पास क्या था? उनके स्नेहभरे अधिकारपूर्ण आदेशके सामने सिर हिलानेके सिवा और क्या जवाब हो सकता था!

—मीठालाल जोशी, पोन्नेरि

गीताप्रेस, गोरखपुरका अति महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

श्रीमद्भागवतमहापुराण-श्रीधरीटीका

श्रीमद्भागवतमहापुराणके प्राचीन टीकाकारोंमें श्रीधरस्वामी बहुमान्य टीकाकार हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराणपर इनकी 'भावार्थ-दीपिका' टीका (श्रीधरीटीका) प्रायः सर्वमान्य और प्रामाणिक टीका मानी जाती है। प्रस्तुत ग्रंथमें श्रीमद्भागवतमहापुराणके संपूर्ण मूल संस्कृतके साथ श्रीधरस्वामीकी टीका भी प्रकाशित की गयी है, साथमें गुजराती भाषानुवाद भी है। श्रीमद्भागवत संस्कृतके विद्यार्थियोंके लिये, शोधार्थियोंके लिये तथा कथाकारोंके लिये यह ग्रंथ विशेषरूपसे उपयोगी तथा संग्रहणीय है।

विभिन्न खण्डोंका विवरण

कोड	खण्ड	विवरण	मू० ₹
2156	प्रथम खण्ड	ग्रन्थाकार—श्रीमद्भागवतमाहात्म्य, प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्कन्ध	३५०
2157	द्वितीय खण्ड	चतुर्थ, पञ्चम एवं षष्ठ स्कन्ध	३५०
2158	तृतीय खण्ड	सप्तम, अष्टम एवं नवम स्कन्ध	३५०
2159	चतुर्थ खण्ड	दशम स्कन्ध [पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध]	३५०
2160	पंचम खण्ड	एकादश, द्वादश स्कन्ध एवं श्लोकानुक्रमणिका	३५०

gitapressbookshop.in से गीताप्रेस प्रकाशन online खरीदें।

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

- १-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर, २-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक
- ३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये), राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
- ४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका, राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
- ५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

केशोराम अग्रवाल (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

सीमित संख्यामें उपलब्ध—गीता दैनन्दिनी सन् 2019, कोड 506, मूल्य ₹३५; एक साथ एक बण्डल (पुस्तक संख्या १८०) लेनेपर नेट मूल्य ₹२० में बाँटनेवाले पाठकोंको दिया जा रहा है। मँगवानेमें शीघ्रता करें।

खुल गया है—मेढ़ता सिटी (राजस्थान) रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म नं० १ पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल।



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना



गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी चैत्र शुक्ल द्वादशी (१६ अप्रैल)-से सत्संगका विशेष आयोजन प्रारम्भ किया जायगा, जो लगभग तीन मासतक चलेगा। इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-

पाठका कार्यक्रम रहता है। गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी द्विजातियोंका सामूहिक यज्ञोपवीत-संस्कार दिनांक ७ जून (ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी)-को होना निश्चित हुआ है, जिसकी पूजा ६ जूनको प्रारम्भ हो जायगी। इच्छुक जनोंको ५ जूनतक गीताभवन पहुँच जाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने, महँगे मोबाइल आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको मतदाता पहचान-पत्र अथवा फोटोयुक्त अन्य पहचान-पत्र रखना आवश्यक है।

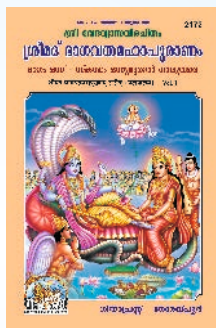
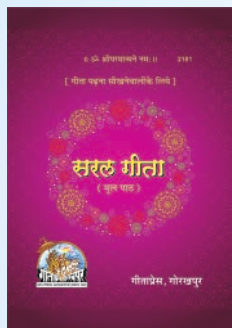
व्यवस्थापक—गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम—२४९३०४

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

सरल गीता-मूल [सजिल्द, पॉकेट साइज] (कोड 2181)—

यह पुस्तक गीताजीको याद करनेवाले पाठकोंको ध्यानमें रखकर प्रकाशित की गयी है। पाठकोंकी सुविधाके लिये प्रत्येक चरणके कठिन शब्दोंको सामासिक चिह्नोंसे अलग करके दो रंगोंमें छापा गया है। प्रत्येक श्लोकके नीचे गीताजीका मूल पाठ भी दिया गया है। इससे श्लोकके प्रत्येक चरणको समझने तथा याद करनेमें सहायता मिलेगी।

मूल्य ₹२०



श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (सटीक) [मलयालम] ग्रन्थाकार (कोड 2172 से 2174 तक तीन खण्डोंमें)—

तीन खण्डोंमें विभक्त यह ग्रन्थ मलयालम भाषामें पहली बार प्रकाशित किया गया है। श्रीमद्भागवत-महापुराणके बारहों स्कन्धोंकी

मलयालम भाषामें बहुत ही सरस, सरल व्याख्या की गयी है। कोड 2172 प्रथम खण्ड अब उपलब्ध तथा कोड 2173 व 2174 प्रकाशनकी प्रक्रियामें है। प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹३५०